1934B? Problem of Higher education (7 parts)

Possibly two series of articles in Jain Mitra. The second page of part 2 is missing. Also there was an article on this topic in the Diamond Jubilee issue of Jain Mitra, 1960.

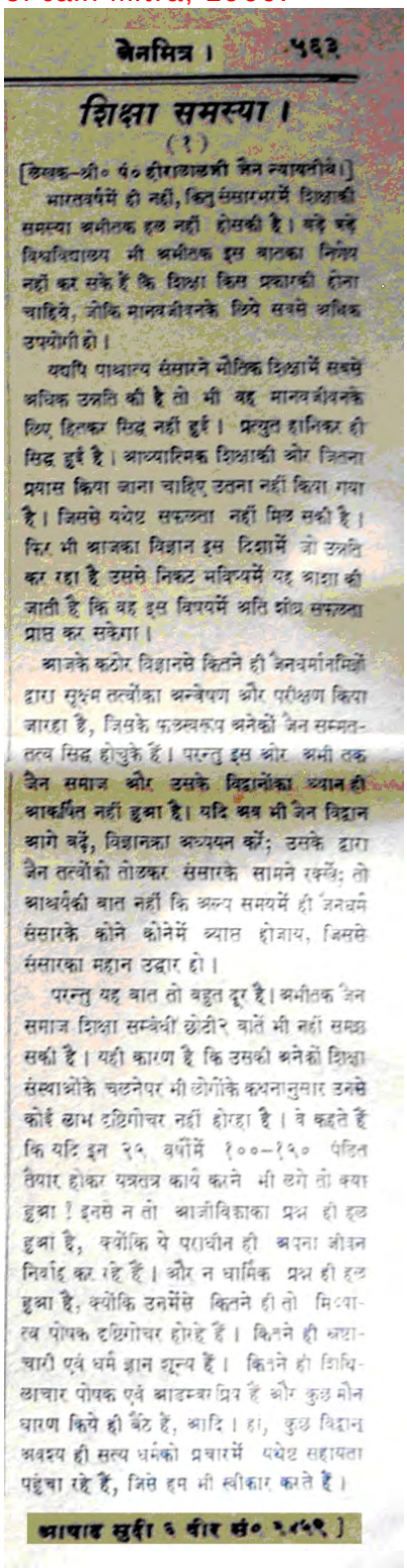

शिक्षा समस्या।

(१)

[लेखक–श्री० पं० हीरालालजी जैन न्यायतीर्थ।]

भारतवर्षमें ही नहीं, किंतु संसारभरमें शिक्षाकी समस्या अभीतक हल नहीं होसकी है। बड़े बड़े विश्वविद्यालय भी अभीतक इस बातका निर्णय नहीं कर सके हैं कि शिक्षा किस प्रकारकी होना चाहिये, जोकि मानवजीवनके लिये सबसे अधिक उपयोगी हो।

यद्यपि पाश्चात्य संसारने लौकिक शिक्षामें सबसे अधिक उन्नति की है तो भी वह मानवजीवनके लिए हितकर सिद्ध नहीं हुई। प्रत्युत हानिकर ही सिद्ध हुई है। आध्यात्मिक शिक्षाकी ओर जितना प्रयास किया जाना चाहिए उतना नहीं किया गया है। जिससे यथेष्ट सफलता नहीं मिल सकी है। फिर भी आजका विज्ञान इस दिशामें जो उन्नति कर रहा है उससे निकट भविष्यमें यह आशा की जाती है कि वह इस विषयमें अति शीघ्र सफलता प्राप्त कर सकेगा।

आजके कठोर विज्ञानसे कितने ही जैनधर्मानुयियों द्वारा सूक्ष्म तत्वोंका अन्वेषण और परीक्षण किया जारहा है, जिसके फलस्वरूप अनेकों जैन सम्मत-तत्व सिद्ध होचुके हैं। परन्तु इस ओर अभी तक जैन समाज और उसके विद्वानोंका ध्यान ही आकर्षित नहीं हुआ है। यदि अब भी जैन विद्वान आगे बढ़ें, विज्ञानका अध्ययन करें; उसके द्वारा जैन तत्वोंको तोलकर संसारके सामने रक्खें; तो आश्चर्यकी बात नहीं कि अल्प समयमें ही जैनधर्म संसारके कोने कोनेमें व्याप्त होजाय, जिससे संसारका महान उद्धार हो।

परन्तु यह बात तो बहुत दूर है। अभीतक जैन समाज शिक्षा सम्बंधी छोटी२ बातें भी नहीं समझ सकी है। यही कारण है कि उसकी अनेकों शिक्षा संस्थाओंके चलनेपर भी लोगोंके कथनानुसार उनसे कोई लाभ दृष्टिगोचर नहीं होरहा है। वे कहते हैं कि यदि इन २५ वर्षोंमें १००–१५० पंडित तैयार होकर यत्रतत्र कार्य करने भी लगे तो क्या हुआ? इनसे न तो आजीविकाका प्रश्न ही हल हुआ है, क्योंकि ये पराधीन ही अपना जीवन निर्वाह कर रहे हैं। और न धार्मिक प्रश्न ही हल हुआ है; क्योंकि उनमेंसे कितने ही तो मिथ्या-त्व पोषक दृष्टिगोचर होरहे हैं। कितने ही भ्रष्टाचारी एवं धर्म ज्ञान शून्य हैं। कितने ही शिथिलाचार पोषक एवं आडम्बर प्रिय हैं और कुछ मौन धारण किये ही बैठे हैं, आदि। हां, कुछ विद्वान अवश्य ही सत्य धर्मके प्रचारमें यथेष्ट सहायता पहुंचा रहे हैं, जिसे हम भी स्वीकार करते हैं।

साथ ही उन लोगोंका यह भी कहना है कि इस समय तक शिक्षा-संस्थाओंमें कमसे कम २५ लाख रुपया खर्च किया जाचुका है। जिसके फल स्वरूप जिस किसी प्रकारके १००–१५० पंडित तैयार हुए हैं। जोकि आज भी पराश्रित एवं द्रव्य-हीन बने हुए हैं। यदि उसी रुपयेको पूंजीके रूपसे दो या तीन हजारके प्रमाणमें बांट दिया जाता, तो कमसे कम १००० गरीब जैनी आर्थिक संकटसे मुक्त होकर शांतिपूर्वक धर्म साधन कर सकते थे।

यहां शंका की जासकती है कि तब आजकल जैसे समाजमें अनेक विद्वान भी दृष्टिगोचर नहीं होते। तो इसका उत्तर उनके पास यह है, कि आजकलके नामधारी हजारों भी विद्वान् उस समयके पं० टोडरमलजी, पं० जयचन्दजी, पं० गोपालदासजी आदिके बराबर योग्यताको नहीं पहुंच सकते हैं। कहनेका सारांश यह है कि आजकल प्रायः सर्वत्र इस प्रकारका वातावरण फैल रहा है, जो कि बहुत कुछ हद तक ठीक भी है। और इसका कारण भी वर्तमानकी दूषित शिक्षा प्रणाली ही है। जिसके कि फल स्वरूप उक्त प्रकारके उपालम्भ दिए जाते हैं।

मैं इस लेखके द्वारा वर्तमानकी शिक्षा प्रणाली एवं उसके प्रत्येक विभागपर पूर्ण रूपेण विचार करूंगा और यथासंभव उसके सुधारकी योजना भी साथमें रक्खूंगा। आशा है कि हमारे विद्वान् पाठक उसपर पूर्ण ध्यान देंगे और इस विषयपर अपने अपने अनुभव समाजके सामने रखकर शिक्षाके वास्तविक रहस्यका उद्घाटनकर उसे कार्य रूपमें परिणत करनेके लिए अग्रेसर होंगे।

शिक्षाके अंग।

शिक्षा, शिक्षक, शिक्षाके पात्र एवं शिक्षाकी साधक सामग्री–शिक्षालय, छात्रालय आदि; ये सब शिक्षाके ही अंग हैं। ये सभी बातें प्रायः प्रत्येक शिक्षा संस्थामें हुआ करती हैं। इसलिए शिक्षा संस्थाओंको विद्वानोंकी जननी ही कहना चाहिए। यदि जननी निर्दोष सुशीला एवं विदुषी होगी तो उसकी संतान भी तदनुकूल ही होगी। इसलिए सबसे प्रथम उस जननी स्वरूपा शिक्षा संस्थाकी परीक्षा करना चाहिए कि उसमें तो कोई दोष नहीं है। जो परम्परा हम लोगोंमें भी आकर हमें नष्ट-भ्रष्ट कर रहा हो।

शिक्षाके विषयमें बहुत कुछ वक्तव्य होनेसे उसे पीछे लिखूंगा। पहिले उसके विभागोंपर ही प्रकाश डाला जाता है।

शिक्षाके पात्र कैसे होना चाहिए ?

शिक्षाके पात्रोंको छात्र या विद्यार्थी नामसे पुकारा जाता है। शिक्षासंस्थाओंमें प्रायः हिन्दी-की चौथी कक्षा पास विद्यार्थीके भर्ती करनेका नियम होता है। जिसमें संस्कृत विद्यालयोंमें भर्ती होनेवाले छात्र प्रायः निर्धन ही होते हैं। जिससे उनके माता-पिता आजीविकाका कोई उपाय न देखकर अपने बालकको किसी संस्थामें भर्ती करा देते हैं, इस आशासे कि यह पढ़ लिखकर ४०) ९०)की नौकरी कर हमारी आवश्यक्ताकी पूर्ति कर सकेगा। इस प्रकारके छात्र प्रायः बड़ी संस्थाओंमें बड़ी कठिनाईसे स्थान प्राप्त कर पाते हैं। क्योंकि यहां तो विशारद या शास्त्रीय कक्षाके छात्रोंके लिए स्थान खाली रहा करता है। ऐसी अवस्थामें इन बेचारे नवीनोंके लिए अवकाश कहां जो वे भर्ती होसकें।

पाठक प्रायः समाचारपत्रोंमें देखते होंगे कि जब किसी बड़ी संस्थाकी आवश्यकता निकलती है, तो उसमें ऊंची कक्षाओंके छात्रोंकी आवश्यकताका ही स्पष्ट उल्लेख रहता है। यह ही शिक्षा संस्थाओंकी सबसे पहली एवं बड़ी भारी भूल है। ज्ञात होता है कि अभीतक संस्थाओंने शिक्षाके पात्रोंको चुनना तक भी नहीं सीख पाया।

यह बात ठीक उस माताके समान है जो पुत्र पैदा करनेके दारुण दुःखको न उठाकर इधर उधरके पुत्रोंसे पुत्रवती होनेके सौभाग्य सुखको देखना चाहती है। इस प्रकारके पुत्र कैसे निकलते हैं सो प्रायः सभी जानते हैं। ठीक यही हाल शिक्षा संस्थाओंका है जो प्रारंभिक छात्रोंको भरती कर उन्हें योग्य बनानेके कष्टसे डरती हैं। और इधर उधरकी संस्थाओंसे आये हुए जिस किसी प्रकारके छात्रोंको अपनी संख्या बढानेके प्रलोभनसे भरती कर लेती हैं।

किन्तु इस विषयमें बड़े २ शिक्षा विशारदोंका यही मन्तव्य है कि प्रारंभिक छात्र ही खूब अधिकतासे भरती करना चाहिए। क्योंकि उनका हृदय सरल, मस्तिष्क धारणाशक्ति वाला, एवं पवित्र होता है। वे छोटे पौधेके समान हैं, जैसा चाहें, बनाया जासकता है।

किन्तु आज कल यह एक रोगसा होगया है, कि छात्र एक संस्थाको छोड़कर दूसरीमें भागते हैं, और दूसरी संस्थावाले विना कुछ सोचे विचारे भर्ती कर लेते हैं। इससे प्रथम तो शिक्षा संचालकोंमें मनोमालिन्य होजाता है, दूसरे संस्थाओंका प्रबन्ध बिगड़ जाता है। तीसरे विद्यार्थी उत्तम शिक्षा सम्पन्न एवं व्युत्पन्न नहीं निकलने पाता है, आदि।

इस विषयमें सबसे पहिली बात तो मुझे उन भागनेवाले छात्रोंसे कहना है कि उन्हें जानेके पूर्व अपनी हानि या लाभका पूरा विचार करना चाहिए। भर्ती होते समयकी प्रतिज्ञाका ख्याल करना चाहिए। इतने पर भी यदि वर्तमान संस्थामें रहते हुए किसी प्रकारकी कमी दृष्टिगोचर हो तो तुरन्त ही अपने संचालकोंसे स्पष्ट शब्दोंमें कहना चाहिए कि हमको संस्थामें इस इस प्रकारके असुमीते हैं, या अमुक व्यक्तिका हमारे साथ इस प्रकारका दुर्व्यवहार है, या यहांपर अमुक विषयका पठन-पाठन ठीक नहीं है आदि आदि। यदि मौखिक न कह सकें तो लिखकर देना चाहिए। मुझे विश्वास है कि संस्थाके संचालक उनके निवेदनपर अवश्य ध्यान देंगे और उनकी असुविधाको दूर कर देंगे। इतनेपर भी यदि संचालक ध्यान न देवें या समुचित प्रबंध न करें तो संस्थाके नियमका जिसप्रकार उल्लंघन न होवे उस प्रकारसे त्याग पत्र देकर और उसमें अपनी सब असुविधाओंको अच्छी तरह उल्लेख कर उसे मंजूर कराकर ही दूसरी संस्थामें पैर रखना चाहिए। अन्यथा उन्हें महान् कृतघ्नताके पापका भागी होना पड़ेगा। क्योंकि इन जननी-सम संस्थाओंने तुम्हारा पुत्रके समान पालन किया है। रात्रि-दिन तुम्हारी समुन्नतिके लिये दूसरोंसे भीख मांगने जैसे अधम कार्यको करतीं हैं। और तुम उन्हें एकदम धोका देकर हताश कर देते हो, यह कहांतक उचित है सो विचारें।

दूसरी बात शिक्षाके संचालकोंसे कहना है। वह यह कि छात्रोंके तुच्छसे भी तुच्छ निवेदनपर उन्हें पूर्ण निरीक्षण करना चाहिए। और यदि किसी प्रकारकी असुविधा दिखे तो तुरन्त समुचित प्रबंध करदेना चाहिए।

कभी कभी यह भी होता है कि छात्रावस्था संकोच प्रधान होनेसे अपने पढ़ानेवालोंकी कमजोरीको जानते हुए भी संचालकोंसे कहनेमें संकोच करती है। परन्तु ऐसे समयपर मैं छात्र व संचालक दोनोंकी ही भूल मानता हूं। छात्रोंकी तो यह भूल है, कि जब वे एक अध्यापककी कमजोरीको दूसरेके स्पष्ट शब्दोंमें कहते फिरते हैं, तब संचालकोंसे कहनेमें संकोच ही किस बातका ? और संचालकोंकी यह भूल है, कि कभी शिकायत की जानेपर भी सच्ची जांच न करके उस मामलेको योंही छोड़ देते हैं जिससे छात्रोंको आगे कभी शिकायत करनेका साहस ही नहीं होता है। चाहिये तो यह कि संचालक सदैव ही गुप्तरूपसे इस विषयकी जांच करते रहें कि किस अध्यापकका कैसा पठनपाठन है। परन्तु यह तो बात बहुत दूर है। आजके संस्था संचालकोंको बड़ीसे भी बड़ी बातोंके सुलझानेके लिये समय ही नहीं मिलता है। वे भी अदालतोंके समान पेशियां रखकर मामलेको रद्दीकी टोकरीमें फेंक देते हैं।

कुछ अध्यापकोंका पठन-पाठन इतना बुरा होता है, कि पढ़ाते समय तो वे कुछ भी नहीं बताते, खाली पुस्तककी लिखी हुई पंक्तियोंको ही दुहरा देते हैं। यदि कोई छात्र उस पंक्तिका भाव दे पूंछे तो उनका उत्तर होता है कि 'भाव' तो बाजारमें जाकर पूंछो। और इतनेपर संचालक न देवें ध्यान, तो बेचारे छात्रोंको मजबूर होकर अन्यत्र जाना ही पड़ेगा। परन्तु मैं फिर भी इस बातको कहूंगा-कि जानेके पहिले तो अपनी सारी व्यवस्था संचालकोंको सुना ही देना चाहिये। यदि इतनेपर भी वे ध्यान न देवें तो स्तीफा देकर ही जावें।

छात्रमें निम्नलिखित गुण अवश्य होना चाहिए।

(१) विद्याभ्यासके लिए जिसकी बुद्धि लालायित रहती हो २-विनयशील हो। ३-प्रमाद रहित हों। ४-गुरुभक्त हो। ५-धार्मिक विचार रखनेवाला हो। ६-शान्तचित्त हो। ७-किसीके झूंठे प्रलोभनमें न फंसनेवाला हो। ८-निरन्तर अपने उद्देश्यको सामने रखनेवाला हो। ९-अपने समयके १-१ मिनिटका सदुपयोग करनेवाला हो। १०-विकथा एवं असत्यवादसे रहित हो। ११-ब्रह्मचर्यका धारी हो। १२-प्रति दिन व्यायाम करनेवाला हो। १३-निरभिमानी हो किन्तु आदर्श पूर्ण उच्चाकांक्षी हो। १४-सेवाको ही अपना धर्म समझनेवाला हो। १५-निरालसी व नित्योद्योगी हो।

१-प्रथम गुणके विना छात्र विद्यार्थी कहाने योग्य नहीं होसकता।

२-द्वितीय गुणके विना विद्याकी प्राप्ति ही नहीं होसकती।

३-प्रमादी विद्यार्थी कभी उन्नत हो नहीं सकता।

४-गुरु भक्ति विना विद्या कीर्ति उन्नति आदि निधियां नहीं मिल सकतीं। क्योंकि ये सब गुरु भक्तिकी ही सखियां हैं।

५-धार्मिक विचारके विना पढ़ना गधेके ऊपर बोझ लादने जैसा है।

६-शांत चित्तके पास ही विद्या स्थिर होकर रहती है, चंचलके पास नहीं।

७-सप्तम गुणसे रहित छात्रका अधःपात बहुत शीघ्र होजाता है।

८-निरन्तर अपने उद्देश्यको सामने रखनेवाला छात्र कक्षामें ही सर्वोत्तम नहीं रहता है अपितु संसारभरमें सर्व श्रेष्ठ बनता है।

९-समयका सदुपयोगी अल्प समयमें अनेकों वर्षोंका काम कर सुखी होता है।

१०-विकथा एवं असत्यवादसे रहित छात्रकी गणना संसारके प्रमाणिक महापुरुषोंमें होती है।

११-ब्रह्मचर्य तो विद्या-भवनकी नींव है। नींवके विना बना हुआ भवन कितने दिन ठहर सकता है। यह तो छात्रका सर्वोच्च गुण है।

१२-ब्रह्मचर्यका रक्षक व्यायाम ही है, इससे छात्रका जीवन सुखी रहता है।

१३-१४-१५-इन गुणोंसे मनुष्य जगतपूज्य बन सकता है। यदि छात्रावस्थामें ये गुण नियमरूपसे पाले जावें तो इसमें कोई भी संदेह नहीं कि वह छात्र भविष्यमें अद्वितीय महापुरुष बनेगा।

शिक्षा समस्या ।

(२)

शिक्षक या अध्यापक ।

(ले०–पं० हीरालालजी जैन न्यायतीर्थ–उज्जैन)

शिक्षा देनेवालेको शिक्षक कहते हैं। जिस प्रकार शिक्षा पानेके लिए योग्य छात्रोंकी आवश्यक्ता है उसी प्रकार शिक्षा देनेके लिए योग्य अध्यापकोंकी आवश्यक्ता है। इसलिये शिक्षकमें निम्नलिखित गुण अवश्य होने चाहिए—

१–अपने विषयमें पूर्ण निष्णात हो, २–अपने भावको भलीभांति व्यक्त करनेवाला हो, ३–सदाचारी हो, ४–अपनी प्रशंसा एवं परकी निंदा न करनेवाला हो, ५–छात्रवर्ग एवं संस्थाकी उन्नतिका इच्छुक हो, ६–निरंतर अध्ययनशील हो, ७–शांत स्वभावी हो, ८–निष्प्रमादी हो, ९–वेतनभोगी हो या अवेतन भोगी, पर दोनोंसे ही निरपेक्ष हो, १०–अनुभवी हो।

१–दश धर्मोंमें उत्तमक्षमा धर्मके समान सबसे प्रधान गुण अपने विषयमें पूर्ण निष्णात होना है। शेष गुण रहते हुए भी जो शिक्षक अपने विषयमें कुशल नहीं तो वह व्यक्ति अध्यापनके योग्य कदापि नहीं होसकता।

आजकल कुछ संस्थाओंके शिक्षकोंमें यह कमी देखी जाती है कि वे जिस विषयको स्वयं तो जानते नहीं हैं, पर केवल अपना महत्व दिखानेके लिए या नौकरी स्थिर रखनेके लिए उस विषयके विशेषज्ञ न होते हुए भी उस विषयके पाठ अपने पास रख लेते हैं। फल यह होता है कि विद्यार्थी बहुत अयोग्य रह जाते हैं। इसलिए विद्यार्थियोंके हितको दृष्टिमें रखते हुए शिक्षकोंका कर्तव्य है कि वे अपने गौण विषयका या अज्ञात विषयके पढ़ानेका मौका आवे तो साफ इनकार करदेना चाहिए कि यह मेरा प्रधान विषय नहीं है। साथ ही पाठ्य विषयोंके विभाग करनेवालेका भी कर्तव्य है कि वह उक्त बातको दृष्टिमें रखते हुए ही विषय-विभाग करे। अन्यथा यह ग्रामीण-उक्ति चरितार्थ होती है कि 'लड़का सीखे नाईका, सिर कटे गंवारका'

२–अपने भावोंको भलीभांति व्यक्त करना भी शिक्षकका एक विशेष गुण है। या इसे एक कला ही कहना चाहिए। जिस शिक्षकके पास यह कला होती है, वह मूर्खसे भी मूर्ख छात्रको कठिनसे भी कठिन तत्व बड़ी सरलताके साथ समझा सकता है। बड़ी२ ग्रंथ-ग्रंथियोंको भी सुलझाकर प्रत्येक छात्रको उसका ज्ञान करा सकता है। कभी२ यह देखनेमें आता है कि कोई २ शिक्षक उस बातको समझते हुए भी इस कलाके अभावसे अपना पूरा भाव छात्रपर व्यक्त नहीं कर सकते हैं, जिससे छात्र उस विषयसे अनभिज्ञ रह जाते हैं इसलिये इस गुणका होना भी शिक्षकमें बहुत आवश्यक है।

३–सदाचारी गुण तो शिक्षकमें सर्व प्रथम ही होना चाहिये। सदाचारका आगे चलकर कितना उत्तम प्रभाव होता है इसे प्रायः सभी जानते हैं। यह वह गुण है जो मनुष्यको उसके परम ध्येय तक पहुंचानेमें सहायक होता है अन्यथा शिक्षकोंका दुराचार कुलक्रमागत रोगोंके समान उनके शिष्य प्रशिष्यों तकमें चला जाता है। अभी कुछ ऐसे उदाहरण विद्यमान हैं कि जो शिक्षक स्वयं अनेग क्रीडा प्रेमी थे तो उनके शिष्य यहांतक कि प्रशिष्य भी उनसे भी अधिक सिद्धहस्त निकले, जिसके कि कारण संस्थाओंसे उन्हें अपमानित होकर पृथक् तक होना पड़ा है। इसलिए इस विषयकी जांच भलीभांति करके ही संस्थाओंमें शिक्षकोंको स्थान देना चाहिए। इसमें "सासूको डांटे, बहूको सीख लगे" की उक्तिके अनुसार छात्रोंको बहुत अच्छी शिक्षा मिलेगी।

४–स्वप्रशंसा एवं परनिन्दासे रहित होना भी शिक्षकका एक खास गुण है। अन्यथा अपनी प्रशंसा और परकी निन्दा करनेवाले शिक्षक स्वयं तो बिगड़ते ही हैं; किन्तु साथ ही अपने साथ रहनेवाले दूसरे शिक्षकोंको भी बिगाड़ देते हैं। क्योंकि ऐसे शिक्षक जब अपने स्वभावके वशीभूत हो छात्रोंसे अपनी प्रशंसा करेंगे तो अन्य शिक्षककी निन्दा करना ही पड़ेगी, क्योंकि अन्यके व्यवच्छेदके विना अपने असाधारण गुणोंका दिग्दर्शन भी कैसे कराया जासक्ता है। ऐसी अवस्थामें जब दूसरा शिक्षक इस बातको सुनेगा तो वह भी इसका परिहार किए बिना कैसे रह सकता है। क्योंकि वह कोई वीतरागी तो है ही नहीं, जो उत्तम क्षमा भाव धारण करले। फल यह होगा कि परस्परमें वैमनस्य बढ़ता जावेगा, जिससे की कभी वाग्युद्ध और कभी मल्ल युद्ध तककी भी नौबत आपहुंचेगी। कोई पाठक यह न समझे कि ये सब केवल लिखनेकी ही बातें हैं। नहीं; ये सब देखी, सुनी एवं अनुभव की गई बातें हैं। शिक्षकोंकी ऐसी दशामें विद्यार्थियोंपर इसका क्या प्रभाव पड़ेगा, यह सहज ही जाना जासकता है।

इसलिए संस्थाधिकारियोंका कर्तव्य है कि जिसप्रकार संस्थामें किसी छात्रको भरती करते समय उसकी खूब जांच की जाती है, उसी प्रकार बल्कि उससे भी अधिक प्रमाणमें शिक्षककी छान-बीन

Next page missing?

शिक्षा-समस्या।

लौकिक शिक्षा।

(३)

(ले०-पं० हीरालालजी शास्त्री, विनोदभवन-उज्जैन)

वर्तमानकी लौकिक शिक्षा, लोकोपकारिणी न होकरके लोक संहारिणी हो रही है। क्योंकि प्रथम तो स्कूल कालेजोंकी शिक्षा बहुव्ययसाध्य है, प्रति वर्ष ही पाठ्य पुस्तकों आदिके बदलने एवं ऊंची फीस आदिमें ही प्रचुर धनका नाश होता है। विद्वानोंकी राय है कि यह शिक्षा तो केवल रईस पुरुषोंके ही योग्य है, इसमें गरीबोंका निर्वाह नहीं। इतनेपर भी अंग्रेजी छात्रालयोंमें रहनेवाले छात्रोंकी बहुव्यय-साध्य फैशन परिवर्तनने तो और भी गजब कर दिया है। जिसके कारण बेचारे साधारण परिस्थितिके योग्य नवयुवक तो पढ़नेसे सर्वथा ही वंचित रह जाते हैं। और जो किसी प्रकार कर्ज आदि करके किसी डिग्रीको पा भी लिया तो उन्हें उतने ही रुपये मासिक कमाना असंभव हो रहा है जितने कि पढ़ते समय अपनी पढ़ाईके लिए उड़ा देते हैं। वाहरी लौकिक शिक्षा!

इस विषयमें भारतके ही नहीं, किन्तु संसारके प्रख्यात महा विद्वान आचार्य सर प्रफुल्लचन्द्र रायके हाल हीमें लिखे गये एक लेखको नीचे उद्धृत कर वर्तमानके कालेज और होस्टलोंकी यथार्थ परिस्थितिसे पाठकोंको परिचित करा देता हूं।

कालेजके छात्र और होस्टल।

"साठ सत्तर वर्ष पहिले बड़े २ जिलोंमें उच्च अंग्रेजी विद्यालयके छात्र वहांके बड़े २ वकील मुख्त्यारोंके घरमें आश्रय लिया करते थे। वे ओसरी बांधकर बाजारसे सौदा लाते, भोजन बनाते और अपने हाथसे बर्तनतक मलनेमें संकोच नहीं करते थे। विद्यालाभके लिये वे इन सब बातोंको तुच्छ समझते थे। इस प्रकार जीवन व्यतीत करनेसे उनके माता पितापर खर्चका अधिक बोझ नहीं पड़ता था। स्व० पं० शिवनाथ शास्त्रीने अपने आत्मचरितमें लिखा है कि वे विद्यार्थी जीवनमें कलकत्तेके एक बहुत मामूली वेतन पानेवाले कम्पोज़िटरके घरमें रहते थे। सौदा-पत्ता लाना, रसोई बनाना आदि सब काम उन्हें करना पड़ता था। प्रतिदिन मसाला, हल्दी, धनिया पीसते२ उनकी अंगुलियोंके नाखून पीले पड़ गए थे! परन्तु आजकल वे सब बातें एकदम गायब होगई हैं।"

"न जाने कैसी अशुभ घड़ीमें लार्ड हार्डिंगने कलकत्ता विश्वविद्यालयको होस्टल (छात्रावास) बनानेके लिए दस बारह लाख रुपये दिए थे। उस समय चारों ओर इसकी वाहवाही हुई थी और लार्ड हार्डिंगका उद्देश्य भी अच्छा था। छात्रोंके स्वास्थ्यके लिये अच्छे हवा और रोशनीदार निवासस्थानोंका होना अच्छा है। लेकिन दशा यह हुई कि हम लोग शिवकी मूर्ति गढ़ने बैठे और गढ़ी गई बंदरकी मूर्ति। इन छात्रावासोंमें नई सभ्यताकी सभी चीजें मौजूद हैं। बटन दबाते ही बिजलीकी रोशनी, दो मंजिले तिमंजिलेपर पम्पके जरियेसे चढ़ा हुआ पानी, घंटा बजते ही तैयार किया हुआ भोजन, सभी आरामकी चीजें मौजूद हैं।"

"किसी किसी छात्रावासमें मेसका प्रबन्ध भी है, लेकिन विद्यार्थीगण इतने शौकीन होगए हैं कि उनका इन्तजाम खुद नहीं करते। सब बातें नौकरोंपर छोड़ रखी हैं। अकसर नौकरोंको यह ठेका दे दिया गया है कि महिनेमें इतने रुपये देंगे, बदलेमें वो दोनों वक्त भोजन प्रदान करेंगे। नतीजा यह है कि नौकर लोग पैसा बचानेके लिये बजारसे गली सड़ी बासी बूसी तरकारियां और रद्दीसे रद्दी सामान ला रखते हैं। यह बात नहीं कि लड़कोंको पढ़नेसे ही समय न मिलता हो बल्कि ताश, शतरंज, कैरम, गप और पिंगपांगमें जितना समय जाता है, उसके दसवें हिस्सेमें ही यदि वे चाहें तो अच्छेसे अच्छा बन्दोबस्त करसकते हैं।"

"इधर कई वर्षोंसे मुझे समस्त भारत वर्षका भ्रमण करना पड़ा है। मैंने देखा है कि पंजाबके विद्यार्थियोंमें विलासिता और शौकीनी सबसे ज्यादा बढ़ी हुई है। अठारह वर्ष पहिले जब मैं लाहौर गया था तभी मैंने देखा था, कि गवर्नमेंट कोलेजके विलायती ढंगका होस्टल लड़कोंको साहबी ठाठ सिखलानेका अच्छा फन्दा था। उस समय सौ रुपये महीनेमें एक विद्यार्थीका खर्च पूरा नहीं होता था। क्रिकेटके लिए फ्लैनलका सूट, और टेनिसके लिए अलग पोशाक आदिमेंही उनका अधिकांश पैसा उड़ जाता था। हालमें फिर दो वार लाहौर जाना पड़ा। इस बीचमें पोशाक और साजसामानका खर्च पहिलेसे कहीं अधिक बढ़ गया है। एक पंजाबी अभिभावकने मुझसे कहा कि अधिक क्या कहूं, लड़कोंका खर्च पूरा करनेमें ही सर्वान्त हुआ जाता है, जीतेजी चमड़ी उधड़ी जाती है। बहुतसे छात्र तो डेढ़-दो-सौ रुपये महीना खर्च करनेमें भी कुंठित नहीं होते।"

"उस दिन इलाहाबादमें भी कई होस्टल देखे। इलाहाबादमें बम्बई और कलकत्तेकी तरह तंग जगहमें कई मंजिले होस्टल तैयार करनेकी जरूरत

नहीं है। वहां सभी होस्टलोंके चारों ओर लम्बे, चौड़े अहाते और खुली जगह हैं। अनेकों लड़कोंसे पूछनेपर मालूम हुआ कि प्रत्येकका सब मिलाकर पैंतालीस रुपया महीना खर्च पड़ता है।"

"मगर एक बात ध्यानमें रखनी जरूरी है कि माता-पिताके एक ही पुत्र नहीं होता। अकसर जहां पैसेकी तंगी होती है वहां संतान भी अधिक होती है। मैं बंगालकी बात करता हूं, यदि एक एक लड़केके लिए पैंतालीस २ रुपया खर्च करना पड़े, तो प्रत्येक माता-पिताको अपने सब पुत्र पुत्रियोंका भार उठाना कितना कठिन है यह कहा नहीं जासकता। फिर कन्याके विवाहमें बहुतोंके घरकी ईंट ईंट बिक जाती है। इसलिए आजकलके इस मंदीके जमानेमें इस प्रकारका व्यय विचारणीय विषय है।"

"कितना कष्ट उठाकर माता पिता लड़कोंको शिक्षाके लिये कलकत्ता भेजते हैं, किन्तु महिने२ मनिओर्डर पाकर सपूतराम क्या करते हैं, उसका भी आभास लीजिए—पहले धोबी कपड़ा धोता था, परन्तु अब वह उन्हें नहीं भाता। इसलिये चारों ओर डाइंग, क्लीनिंग कम्पनियोंकी भरमार होरही है। पहले मामूली नाई बाल काटता था, मगर अब वह लड़कोंको पसंद नहीं। इसलिये 'हेयरकटिंग सेलून' पैदा होरहे हैं। फिर रोज शामको रेस्तरांमें जाकर चाय, केटलट खाये विना जीभकी तृप्ति नहीं होती। हफ्तेमें कमसेकम दो दिन किसीको तीन दिन सिनेमा देखे विना खाना हजम नहीं होता....बरखुरदार यह भूल जाते हैं कि इस तरह-आरामकी जिन्दगी नहीं कटेगी। जिस दिन ये यूनिवर्सिटीका दरवाजा खोलकर जीवन-संग्राममें पैर रखेंगे उस दिन चारों ओर अन्धकार देखकर उन्हें आटे-दालका भाव मालूम होगा।"

"छात्रोंमें शहरोंमें जाकर पढ़नेका प्रबल आकर्षण देख पड़ता है। क्योंकि और जगह शहरोंकासा विलासप्रिय और परिश्रम हीन जीवन यापन नहीं होसक्ता।"

"यहां बगेरहाट-कालेजकी बात सुनिये। चौदह पन्द्रह वर्ष पहिले बगेर-हाटके कुछ सज्जन मेरे पास सहायताके लिये आए। उन्होंने कहा कि वे बगेरहाटमें एक कालेज खोलना चाहते हैं। क्योंकि शहरमें लड़कोंको पढ़ाना बहुत व्ययसाध्य है। साथ ही वहां लड़कोंको बिगड़नेके बहुत प्रलोभन हैं। मैंने भी सोचा कि मलेरियासे मुक्त किसी देहातमें, जहां जगहकी इफरात हो, तथा रेल और स्टीमरका सुभीता हो, कालेज खोलनेसे पुराने टोल (शालाओं) और नवीन शिक्षा प्रणाली दोनोंका सामंजस्य होजायगा।"

"पहले छात्रावासिके लिए नदी किनारे हरी भूमि-पर कच्चे कमरे बनाये गये। चारों ओर खुली जगह थी, जिसमें हरदम सनसनाती हुई हवा बहती थी। कलकत्तेकी तंग गलियों और दम घुटने वाले कमरोंसे ये अच्छे थे। प्रत्येक कमरेका भाडा केवल एक रुपया महीना रखा गया। लम्बे चौड़े मैदानमें क्रिकेट, फुटबाल खेलने और समीप नदीमें नाव चलाने और तैरनेका भी इन्तजाम था। मगर इसका नतीजा उलटा हुआ। इन सब सुविधाओंके होते हुए भी दिन व दिन छात्रोंकी संख्या घटने लगी। पहले दो वर्ष कालेजमें तीन चारसौ लड़के थे। गत वर्ष कुल एकसौचालीस ही लड़के आए। इस साल बहुत खींचतान करनेपर ढाईसौका नंबर पहुंचेगा। कालेजके अध्यक्ष बड़े सज्जन, विद्वान्, छात्रवत्सल तथा सरल व्यक्ति हैं। वे तथा अन्य कई अध्यापक समीप हीके रहनेवाले हैं। इसीलिए वे लड़कोंके पढ़ने लिखनेपर भी अच्छी तरह दृष्टि रख सकते हैं। ये अध्यापक चुनचुनकर रखे गए हैं और कलकत्तेके अध्यापकोंसे किसी प्रकार भी घटकर नहीं हैं। जब लड़कोंकी संख्या घटने लगी तब लड़कोंकी ओरसे यह अभियोग लगाया गया कि कच्चे घरोंमें रहना उन्हें पसन्द नहीं है। इसपर मैंने कालेजके अधिकारियोंके साथ गलेमें झोली बांधकर जगह-जगह घूम-फिरकर भीख मांगी। कई पक्के मकान तैयार किए गए, मगर नतीजा कुछ न निकला।"

"बगेरहाटके किसी किसी सज्जनने मुझसे कहा, "महाशय, आप नहीं समझते कि लड़के अब भी बगेरहाटमें पढ़नेके लिए क्यों राजी नहीं हैं।" अजब शहर कलकत्तेमें आकर्षणकी अनेक चीजें हैं। वहां बिजलीकी बत्ती, बड़े २ होस्टेल, रेस्तरां, सिनेमा आदि मौजूद हैं। फिर बगेरहाटमें रहनेसे मा-बाप और अभिभावकोंकी दृष्टिके सामने रहना पड़ेगा। कलकत्तेमें रहनेसे महीने महीने चालीस पैंतालीस रुपया मनीआर्डरसे आ जाता है और उसे स्वतंत्रतासे खर्च किया जा सकता है।"

"मौजूदा शिक्षा प्रणालीके कितने पाप और शाप हैं उनका यहां मैंने केवल आभास मात्र दिया है। अवश्य ही लड़के शिक्षाके लिए अपने अभिभावकोंसे प्रतिमास रुपया पायेंगे। इसके विरुद्ध मुझे कुछ नहीं कहना है। लेकिन मेरे कहनेका मतलब यही है कि कालेजमें पढ़नेवालोंको समझ होना चाहिए, कि वे जिन रुपयोंका श्राद्ध करते हैं, वह कितने कष्टसे आता है। जरूरतसे ज्यादा खर्च करना केवल नीचताका परिचायक ही नहीं है बल्कि वह छात्रोंके भावी जीवनकी उन्नति" पर भी कुठाराघातक करता है। (विशाल भारत)

वर्तमानकी शिक्षाप्रणाली कितनी दूषित है, उसके कितने पाप और शाप हैं, उसमें कितने परिवर्तनोंकी आवश्यकता है; एवं यथार्थ शिक्षण-पद्धति कैसी होना चाहिये, इस विषयमें संसारके प्रसिद्ध लब्धकीर्ति कवि सम्राट् श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुरने 'शिक्षकोंसे' इस शीर्षक लेखद्वारा जो उद्गार प्रगट किए हैं वे प्रत्येक शिक्षित व्यक्तिके अनुमनन करने योग्य हैं। इसलिए उसे आगामी अंकमें पाठकोंके सामने उद्धृत करेंगे। आशा है पाठकगण उसका अनुमनन कर एक ऐसा वातावरण पैदा करेंगे, जिससे भावी संततिके लिए एक सुयोग्य शिक्षापद्धतिका प्रादुर्भाव होसके। (क्रमशः)

शिक्षा समस्या।

(४)

(ले:-पं० हीरालालजी शास्त्री न्यायतीर्थ-उज्जैन)

शिक्षाका स्वरूप।

जिसके द्वारा कुछ सीखा जावे, नवीन ज्ञान प्राप्त किया जावे उसे शिक्षा कहते हैं। यों तो मनुष्य प्रत्येक ही पदार्थसे कुछ न कुछ सीखा ही करता है, परन्तु यहांपर यही शिक्षा अभीष्ट है, जो मनुष्यको अवनतिके गर्तसे उठाकर उन्नतिके शिखरपर पहुंचानेमें, असभ्यसे सभ्य बनानेमें, नीचसे ऊँच करनेमें, पापीसे धार्मिक बनानेमें, एवं दुःखीसे सुखी बनानेमें सहायक हो।

जिस शिक्षासे मनुष्यके चारित्रका विकाश न हो, बुद्धिका प्रकाश न हो, सत्कार्यमें उत्साह न हो एवं जिससे आत्म विज्ञान पैदा न हो, यह शिक्षा नहीं, किन्तु शिक्षाभास है, दुःशिक्षा है। जिस शिक्षासे मनुष्यके जीवनमें उत्साहका संचार नहीं होता, मनुष्यकी हृत्तन्त्रीके तार उस सदानंदके संगीतके मधुर रवसे कम्पित नहीं हो उठते, उस शिक्षाको 'शिक्षा' नाम देना ही शिक्षाके लिये कलङ्क है।

शिक्षाके इस प्रकार पवित्रतम उद्देश्यको सामने रखकर जब हम वर्तमानकी शिक्षा-प्रणालीकी ओर दृष्टिपात करते हैं, तो आकाश-पातालका अंतर दिखायी पड़ता है। क्योंकि समाचार पत्रोंमें आये दिन यह समाचार प्रकाशित होते रहते हैं, कि अमुक विद्यार्थी अमुक कक्षामें फेल होनेके कारण रेलके नीचे आकर मरगया। अमुक छात्र विष खाकर मर गया, अमुक छात्र जीवनसे हताश होकर आत्मघात करते पकड़ा गया आदि। जिस शिक्षाके वर्षों अध्ययनके बाद भी मनुष्य आत्मघात जैसे भयंकर पापको करनेके लिए तैयार हो जाय, क्या उसे कोई भी शिक्षा कहनेके लिए तैयार होगा?

शिक्षाके विषयमें मुझे महाभारतका एक दृष्टांत याद आता है कि जब कौरव एवं पांडव विद्याभ्यासके लिए आश्रममें अपने गुरुके पास पहुंचे, तो गुरुने प्रथम ही दिन पाठ दिया कि "क्रोध नहीं करना, क्रोध बुरा वस्तु है" दूसरे दिन सबसे पूछा गया कि पाठ याद है? तो सबने उत्तर दिया, हां याद है। किंतु जब यही प्रश्न युधिष्ठिरसे किया गया, तो उत्तर मिला "नहीं।" गुरुदेवने रुष्ट होकर (परीक्षा) २-४ तमाचे जमाये। दूसरे दिन फिर पाठ पूछा गया, तो 'नहीं' जवाब मिला और २-४ तमाचे फिर इनाम मिले।

यही क्रम करीब एक मास तक चालू रहा, अंतमें एक दिन गुरुदेवने अत्यन्त रुष्ट होकर पूछा कि अरे बेवकूफ! आज भी याद हुआ या नहीं, तो युधिष्ठरने अत्यन्त प्रसन्नतासे उत्तर दिया। 'हां महाराज, याद है। गुरुदेवने पूछा, अभी तक क्यों याद नहीं हुआ था? उत्तरमें युधिष्ठिरने कहा, महाराज, मैं अपनी जांच कर रहा था, कि मुझे क्रोधका निमित्त मिलनेपर क्रोध आता है या नहीं, आज एक मासके अभ्यासके बाद मुझे अब विश्वास होगया है कि क्रोधके निमित्त मिलने पर भी मुझे क्रोध पैदा नहीं होगा। पाठकोंको ध्यान रहे, कि यही बात उन्होंने अपने जीवन भर निभाई। यहांतक कि द्रौपदीके चीर हरण जैसे मौके पर भी जब कि उनके चारों भाई युद्धके लिए क्रोधसे उन्मत्त हो युधिष्ठिरके इसारेकी प्रतीक्षा कर रहे थे, परंतु धन्य युधिष्ठिरको कि उन्होंने उस समय भी क्रोधको पासमें आने तक नहीं दिया।

कहनेका सारांश यह है कि ऐसी शिक्षाको ही सच्ची शिक्षा कहते हैं। परन्तु यहां तो हमारा यह हाल है कि शास्त्रकी व्याख्या करते समय तो बालकी खाल निकाल कर अपने पांडित्यका प्रकाश करेंगे। किन्तु यदि वहींपर किसीने कोई आपत्ति पेश की तो क्रोधका पारा एकदम सीमाके बाहर हो जायगा। इसलिये जिन बातोंको हम अपने जीवनपर ही नहीं उतार सकते, ऐसी सहस्रों बातोंके जान लेनेसे भी हमें क्या प्राप्त होसकता है।

इसी प्रकार किसी भाषाके जान लेनेको भी शिक्षा नहीं कह सकते। शिक्षा और भाषा ये दो भिन्न २ वस्तुएं हैं। भाषा तो किसी जानी हुई बातको प्रगट करनेमें ही सहायक हो सकती है। क्योंकि लोकव्यवहार चलानेके लिये जिसके द्वारा अपने मनोगत भाव प्रगट किये जासकते हैं उसे ही भाषा कहते हैं। इसलिये भाषाको ही शिक्षाका ध्येय न माना जाय किन्तु उसकी सहायक ही माननी चाहिये।

शिक्षाके भेद।

शिक्षाके मूलमें दो भेद हैं-१ लौकिक शिक्षा, २ पारमार्थिक शिक्षा। लोकव्यवहारमें काम आनेवाली शिक्षाको लौकिक शिक्षा कहते हैं। परमार्थ मोक्षके लिए उपयोगिनी शिक्षाको पारमार्थिक शिक्षा कहते हैं।

यद्यपि वर्तमानके शिक्षालयोंमें प्रचलित शिक्षा लौकिक और पारमार्थिक दोनोंके ही संमिश्रण रूप है, परंतु यथार्थमें उससे किसी भी एक विषयकी पूर्णता प्राप्त नहीं होती है। असल बात यह है कि लौकिक शिक्षा तो हमारे विद्यालयोंमें नहींके ही बराबर है। क्योंकि उसे प्राप्त कर निकलने वाले हमारे नवयुवकोंका आजीविका सम्बंधी प्रश्न उससे हल नहीं होता है। जिसके कारण हजारों नवयुवक मारे मारे फिरते हैं। रही पारमार्थिक शिक्षा, सो प्रथम तो यह पढ़नेवालोंकी बिना रुचिके ही, जिस किसी प्रकार धुंटाकर उनके गले उतारी जाती है। दूसरे उसका उद्देश वर्तमानमें केवल परीक्षा पास करने तक सीमित रह गया है। तीसरे उसे अपने जीवनमें उतारनेकी बात न तो पढ़ते समय सिखाई जाती है न पढ़नेके बाद सीखनेकी ओर ही लक्ष्य दिया जाता है। इसलिये इस शिक्षाके द्वारा हमें जो लाभ प्राप्त होना चाहिये वह नहीं होपाता है। चौथे वर्तमानके संस्कृत विद्यालयोंमें पढ़ाई जानेवाली शिक्षाका नाम ही पारमार्थिककी शिक्षा समझा जाने लगा है। सो उसका क्रम भी बहुत कुछ अनुपयुक्त होनेसे यथार्थ साध्यकी सिद्धि नहीं होती है।

वर्तमानकी शिक्षापद्धतिके अक्रम कहनेका प्रथम कारण यह है कि हमारे धर्मग्रन्थोंके संस्कृत और प्राकृत दोनों भाषाओंमें होते हुए भी आज केवल संस्कृत भाषाका ही व्याकरण साहित्य पढ़ाया जाता है, जब कि हमारे मूल धार्मिक ग्रन्थराज प्राकृत भाषामें ही हैं। दूसरा कारण यह है कि जो संस्कृत व्याकरणकी पढ़ाई है वह बहुत कर वैदिकसिद्धांत और साहित्यकी पढ़ाई तो छात्रोंके नैतिक पतन तककी कारण हो रही है। इसी प्रकार धर्म और न्यायकी पढ़ाईके बारेमें बहुत कुछ वक्तव्य है जो कि आगे इसी लेखमें दिखाऊंगा।

व्याकरण-समीक्षा एवं उसके सुधारका उपाय।

किसी भी भाषाके ज्ञानके लिये उसके व्याकरणका पढ़ना बहुत आवश्यक है। इसलिये संस्कृत भाषा ज्ञानके लिये उसका व्याकरण पढ़ाया जाता है, परन्तु उसका क्रम ठीक न होनेसे छात्र यथार्थ बोधसे वंचित रह जाते हैं। या अजैन व्याकरणका उन्हें सहारा लेना पड़ता है। यहांपर कोई यह न समझे कि जैन व्याकरणसे यथार्थ बोध नहीं होता है। नहीं, होता अवश्य है बल्कि कुछ स्थल तो अजैन व्याकरणसे भी बहुत कुछ अधिक महत्व रखते हैं, किन्तु हमारे व्याकरणोंमें जो कमी है वह यह कि उनकी प्रक्रियारूप रचना नहीं है। इससे क्रम बद्ध शास्त्रीय कक्षातक उनकी पढ़ाई नहीं हो पाती है। क्योंकि जैनेन्द्र प्रक्रिया तो प्रारम्भिक छात्रोंको बहुत अधिक एवं दुरूह है, जिससे विद्यार्थी उससे यथेष्ट लाभ नहीं उठा पाते। लघु जैनेन्द्र वृत्तिके सूत्र प्रायः शब्दार्णव चंद्रिकासे

पौष सुदी ५ वीर सं० २४६०

शिक्षा-समस्या।

लौकिक शिक्षा।

(४)

(ले-पं० हीरालालजी शास्त्री, विनोदभवन-बर्दीन)

वर्तमान शिक्षण पद्धतिके विषयमें विश्वकवि श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुरका वक्तव्य।

"जबतक मुझे पाठशाला जानेके लिए मजबूर किया जाता था, तबतक उसकी यंत्रणा मुझे असह्य प्रतीत होती थी। मैं बहुधा गिना करता था कि इससे छुटकारा पानेके लिए कितने वर्ष और व्यतीत करना पड़ेंगे।"

xxx कैसी उत्कंठासे मैं चाहता था कि किसी मंत्रबलसे १८-२० साल बाधकर एकदम प्रौढ़ावस्थामें पहुँच जाऊँ। बादमें मुझे ज्ञात हुआ कि उस सालकी सर्वत्र प्रचलित शिक्षा-प्रणालीका कृत्रिम भार ही मेरे मनको पीड़ा पहुंचा रहा था।"

"ऐसे ही महत्वपूर्ण समयमें निर्जीव, नीरस एवं विश्वकी संगतिसे विलग पाठशाला रूपी कारखानेमें मृत पुरुषकी आंखोंकी पुतलियोंके समान घूरती हुई शोभाहीन सफेद दीवारोंके भीतर बालकका जीवन डाला जाता है। संसारके आनन्द ग्रहण करनेसे ईश्वर प्रदत्त गुणोंको लेकर हमारा जन्म होता है। परन्तु आजकलकी शिक्षाप्रणाली इस आनन्ददायिनी प्रतिमाका दमन करती है और नियमानुशासन नामक शक्ति उसे कुचल डालती है। बालकका मन सदैव प्रकृतिसे स्वयं ज्ञान प्राप्त करनेके लिए तत्पर, व्यग्र और उत्सुक रहता है, किंतु नियमानुशासन उनकी इस स्फूर्तिको निष्प्राण बना देता है। अजायबघरकी निर्जीव मूर्तियोंके समान हम कक्षामें बैठे रहते हैं और पुस्तोंपर हिमशिलाओंकी वृष्टिके समान हमपर पाठोंकी वर्षा की जाती है।"

"बचपनमें हम अपने सारे शरीर और मनकी सहायतासे सब इन्द्रियोंकी सम्पूर्ण स्फूर्ति और उत्सुकताके साथ शिक्षा ग्रहण करते हैं, परन्तु आज कलकी पाठशालाओंमें जाते ही सहज बोधके ये सब द्वार बन्द होजाते हैं।"

हमारे नेत्र अक्षरोंको देखते हैं, हमारे कान दुर्बोध पाठोंको सुनते हैं, परन्तु हमारा मानस प्रकृतिके हृदय देशसे सततप्रवाहित विचार धारासे सिंचित नहीं हो पाता। इसका कारण यह है कि हमारे शिक्षकोंकी बुद्धि समझती है कि ये सब बातें विघ्नकर हैं, मूढ़ताओंको उपजाती हैं, तथा इनसे कोई महान् उद्देश्य सिद्ध नहीं होता।"

"जब हम अपने लिये किसी नियमानुशासनको अंगीकार करते हैं तब हमारी यही चेष्टा रहती

है कि अपने प्रयोजनके अतिरिक्त अन्य किसी भी वस्तुको स्वीकार न करें। ऐसी प्रयोजनशीलता और स्वार्थपरता तो प्रौढ बुद्धिके ही उपयुक्त है, परन्तु इसे हम बच्चोंको पाठशालाओंमें सीखनेके लिए बाध्य करते हैं। हम उनसे कहते हैं "अपने मनको कभी चंचल और व्यग्र मत होने दो, जो तुम्हारे सामने है, जो दिया गया है, उसीपर ध्यान दो" यह प्रकृतिके उद्देश्यके प्रतिकूल है। इससे बच्चोंको बडी यातना पहुंचती है। मनुष्य शिक्षक जीवनकी शिक्षामें नहीं वरन् कृत्रिम तथा कटे छंटे पाठोंमें ही विश्वास रखता है। इससे बच्चोंकी बुद्धिका समस्त विकाश रोका ही नहीं जाता, प्रत्युत बरबस दूषित भी कर दिया जाता है। प्रकृति श्रेष्ठतम आचार्य है, परन्तु मनुष्य शिक्षक पग-पगपर उसका प्रतिरोध करता है।"

"मेरी धारणा है कि विद्यार्थियोंको प्राकृतिक दृश्य आदिसे घिरे हुए स्थानोंमें रहना चाहिये। शिक्षाकी दृष्टिसे इसका विशेष महत्व है। उनकी बुद्धिको यहां वहां विचरने देना चाहिये। आजकी घटनाओं और प्रयोजनोंको स्वयं ही जानलें और इनसे आश्चर्य चकित होजाय।"

"कल नूतन दिवस, जीवनकी नवीन घटनाओं और तथ्योंपर उनका ध्यान प्रोत्साहित करेगा। बच्चोंके लिए यही सर्वोत्तम शिक्षा पद्धति है। किन्तु आजकी प्रचलित पाठशालाओंमें क्या होता है। प्रतिदिन उसी समय वही पुस्तक उनके सामने रखी और पढ़ाई जाती हैं; उनका ध्यान प्रकृतिके आकस्मिक चमत्कारोंका लक्ष्य कभी भी नहीं बन पाता।"

"प्रौढ़ावस्थामें हमारा मन ऐसी बातोंसे भरा रहता है जिसमें प्रतिबन्ध तथा व्यवसायकी आवश्यक्ता होती है। ××× किन्तु बालकोंको ऐसी कोई व्यग्रता नहीं होती। ये प्रत्येक नवीन वस्तु और घटनाको उदार और निष्पक्ष मनसे ग्रहण करते हैं। उनकी स्वीकृतिमें प्रचुरता तथा भेदभाव हीनता रहती है। इसीसे वे थोड़े समयमें असंख्य बातोंको सीख लेते हैं। यदि उनके ज्ञानोपार्जनकी गतिका मिलान हम प्रौढ़ पुरुषोंकी मन्द गतिसे करें, तो आश्चर्यचकित हो जांयगे। जो शिक्षायें इस प्रकार प्राप्त की जाती हैं वे जीवनकी सबसे अधिक महत्वपूर्ण बातें होती हैं। इससे भी अधिक आश्चर्यकी बात तो यह है कि इसमें अधिकांश भावात्मक सत्य भी हुआ करते हैं।"

"बालक अत्यंत सुगमतासे सीख लेते हैं, क्योंकि उनमें स्वाभाविक प्रतिभा होती है। किन्तु प्रौढ़ मनुष्य निरंकुश होते हैं, वे स्वाभाविक गुणोंकी परवा नहीं करते। और कहते हैं कि बच्चोंको भी उसी रीतिसे शिक्षा दी जानी चाहिये। जिससे उन्हें दी गई है। हम बालकोंकी बुद्धिको बलपूर्वक शिक्षासे भरना चाहते हैं, इससे हमारे उपदेश उनके लिये एक प्रकारकी यंत्रणा बन जाते हैं। यह मनुष्यकी एक सबसे अधिक निर्दय सबसे हानिकारक गलती है।"

"चूंकि मुझे भी बचपनमें इस शिक्षा प्रणालीके आधीन रहना पड़ा और इसकी यंत्रणा मुझे याद रही। इसीलिये मैंने एक ऐसी संस्था स्थापित करनेका यत्न किया जहां पाठशालाके होते हुए भी बालक स्वतंत्र रहें।

'उस प्राकृतिक शिक्षालयका जिसका विधान स्वयं प्रकृति देवी अपने सब प्राणियोंके लिये करती है कुछ ज्ञान रखनेके कारण मैंने नगरसे बहुत दूर एक रमणीय स्थानमें अपनी संस्थाका निर्माण किया। जहांपर बालकोंको यथासंभव पूर्ण स्वातंत्र्य सुलभ है। विशेष उल्लेखनीय बात यह थी कि मैं उन्हें वह शिक्षा नहीं देता जिसके लिये उनकी बुद्धी अपरिपक्व हो।' ×××

'मेरी सदैव यह इच्छा रहती है कि विद्यार्थियोंके लिए एक नूतन वातावरणकी रचना की जाय। इसे मैं कक्षाकी पढ़ाईसे कहीं अधिक आवश्यक समझता हूं।'

'गीत अथवा कविता बनाते समय मैं विद्यार्थियों और शिक्षकोंको अपने पास बुला लेता और उनके साथ इनको गाता अथवा पढ़ता। इन सब बातोंसे उस वातावरणकी सृष्टिमें सहायता मिलती, जिसमें बालकगण अनेकानेक अगोचर किन्तु जीवनप्रद तत्वोंको समझ लेते थे।'

'हमारी शिक्षाका यह ध्येय होना चाहिये कि वह प्रत्येक बालकको वर्तमान युगके आदर्शको समझने और सफल बनानेकी योग्यता प्रदान करे। न कि भेदभाव उपजावे अथवा राष्ट्रीय पक्षपातके अभ्यासको उत्तेजित कर उसके उद्देश्यको विफल बनावे।'

'हां, मानवजातिमें अनेक स्वाभाविक भिन्नतायें अवश्य हैं, जिनकी रक्षा और सन्मान होना चाहिये।'

'हमारी शिक्षाका यह धर्म होना चाहिये कि हम विषमताओंके रहते हुए अपनी एकताको समझें, विरोधोंके गहन काननके भीतर ही सत्यका अन्वेषण करें।'

विश्वभारतीमें हमने यही करनेका प्रयत्न किया है। अपनी संस्थाके सब कार्योंमें विद्याविषयक तथा विविधकला सम्बन्धी बातोंमें अथवा ग्रामीण जीवनके पुनर्निर्माणमें सहायता देकर अपने पड़ोसियोंकी सेवा आदि कार्योंमें एकताके इसी आदर्शका संचार करना ही हमारा प्रयास रहा है। हमारे विद्यार्थी निकटवर्ती ग्रामवासियोंकी सेवा करने और उन्हें नाना प्रकारकी सहायता देने लगे हैं। इस भांतिके अपने आसपासके जीवनसे सदा सम्बद्ध रहते हैं। आत्म विकाशके लिए उन्हें स्वतंत्रता प्राप्त है, यही बाल्यजीवनकी सर्वोत्कृष्ट प्रतिभा है।' ×××

'बालकोंकी बुद्धि बहुधा कारागारमें बंद कर दीजाती है, इस कारण वे दूसरी जातियोंको जिनकी भाषा और आचार विचार उनसे भिन्न होते हैं, समझनेमें असमर्थ होजाते हैं।'

× × ×

'मैंने बालकोंकी बुद्धिको संकीर्णता उत्पन्न करनेवाली कुत्सित रीतियों तथा दुराग्रहोंसे बचनेके लिये प्रयत्न किया है। जिनकी आजकल पुस्तकों द्वारा इतिहास, भूगोल अथवा राष्ट्रीय पुस्तकोंद्वारा वृद्धि की जारही है।'　　(क्रमशः)

शिक्षा समस्या ।

(१)

काव्य-साहित्य-समीक्षा ।

(ले:-पं० हीरालालजी शास्त्री न्यायतीर्थ-उज्जैन)

हमारे विद्यालयोंमें जो यहां कवियोंके बनाये हुये काव्य ग्रंथ पढ़ाये जाते हैं, वे प्राय: साहित्यके रस, अलंकार आदिसे परिपूर्ण किसी एक महापुरुषके चरित्र चित्रण रूप हुआ करते हैं। इनका उद्देश चरित्र सम्बन्धी विशेषताओंके दिखानेकी ओर उतना नहीं रहता जितना कि काव्यके नायक, नायिकाओंके अंग सौष्ठव, रति-महोत्सव प्रकृति सौन्दर्य, वसन्त-विहार, जलकेलि आदिके वर्णन करनेकी ओर रहता है। किसी भी काव्य ग्रन्थको हाथमें ले लीजिए, उसे पढ़ते समय वही अनुभव होगा जो किसी प्रसिद्ध उपन्यासकारके लिखे हुए उपन्यासके पढ़नेसे होता है। भेद इतना ही होता है कि उपन्यासके पात्र प्राय: सभी कल्पित हुआ करते हैं, जब कि महाकाव्योंमें कोई एक ही कल्पित-पात्रवाले होते हैं। हमारे विद्यालयोंमें संस्कृत साहित्य पढ़ानेका उद्देश्य यह है कि जिससे छात्रोंको संस्कृत भाषाका परिमार्जित ज्ञान होसके। किन्तु वर्तमानमें साहित्यके जो ग्रंथ पढ़ाये जाते हैं उनसे छात्रोंकी संस्कृत भाषामें प्राय: उन्नति न होकर प्राय: दुराचारमें उन्नति हो रही है। शायद पाठक मेरी इस बातसे चकित होकर प्रश्न करेंगे कि दुराचारकी उन्नति कैसे। उनके समाधानके लिए वर्तमानमें पढ़ाये जानेवाले साहित्यके निम्न लिखित अवतरण पर्याप्त होंगे-

नवा वधूर्यत्र जनाभिशंकया न गाढपालिङ्गति जातवेदसम् । चंद्रप्रभसर्ग १ श्लो. २७।

'कुचेषु यस्मिन् करपीडनानि' ।

॥ चं० सर्ग १ श्लो० ३२ ॥

'हर्षप्रकर्षं तनुते मिलित्वा द्राग्बालयतारुण्यवतीव कान्ता । (जीवंधरचंपू प्र० लं० ९)

अस्याः पादयुगं गतश्च वदनं
किञ्चाब्जसाम्यं दधुः ।
कान्तिः पाणियुगं दृशौ च विदधुः
पद्माधिकोल्लासताम् ॥
वेणी मन्दगतिः कुचौ च वत हा
सन्नागसंकाशतां ।
स्वीचक्रुः सुदृशोऽङ्गसौष्ठवकला
दूरे गिरां राजते ॥
(जी० चं० प्र० लं० २८)

यह तो स्त्रीके शरीरके अवयवोंका सामान्य ही वर्णन है किंतु आगे इससे भी ऊँचे चढ़ा हुआ वर्णन देखिए—

यस्याः पादौ मृदुलकमलस्पर्द्धिशोभाविलासौ,
जंघे मारत्रिभुवनजयेकाहली बद्धमातान्।
नाभिः पद्मायुधरसहरी कृपिकेवाविरासी-
द्रूकं रांकासितरुचितुलासंगमंगीचकार ॥३५॥

इस प्रकारके अनेकों श्लोक स्त्रियोंके अंग-सौष्ठवके वर्णनोंसे भरे पड़े हैं। किन्तु इसका गद्य भाग तो और भी अधिक सीमा पार कर गया है।

देखिये–जीवंधर चम्पू पृ० ४५।

पृ० ४५ का गद्य भाग पढ़नेसे सर्वथा विद्वान्भिज्ञ विद्यार्थीके हृदयमें भी विकारभाव जागृत हो नहीं होगा बल्कि उसका हृदय ही उसे पानेके लिए रात दिन चंचल हो उठेगा।

अब जरा धर्मशर्माभ्युदय महाकाव्यके सर्ग ६ श्लोक ४९, सर्ग १० श्लोक २१ और ३८, सर्ग १२ श्लोक ९–१० व ४२ को भी देखिये।

इस प्रकार धर्मशर्माभ्युदय काव्यमें तो सर्गके सर्ग ही षड्ऋतु वर्णन, पुष्पावचय वर्णन, जल-क्रीडा वर्णन, रासक्रीडा वर्णन, तीनों संध्याओंका वर्णन, चन्द्रोदय वर्णन आदिसे भरे पड़े हैं। उक्त विषयोंका वर्णन महाकाव्योंमें महाकवियोंके द्वारा कैसा किया जाता है, यह बतानेकी आवश्यकता नहीं है। जिन्होंने थोड़ासा भी संस्कृत साहित्य देखा है वे भलीभांति जानते हैं। तब सोचनेकी बात है कि जिन शृंगार–पूर्ण कथानकोंके बांचने मात्रसे ही योगियोंका मन भी चञ्चल हो सकता है, तो उनको पढ़नेवाले (अन्वय अर्थ पूर्वक एक शब्दका अर्थ लगाकर उसके आशयको हृदयंगम करनेवाले) बेचारे अल्पवयस्क छात्रोंके ऊपर उसका क्या प्रभाव पड़ता होगा सो पाठक ही स्वयं विचारें।

इसी प्रकार गद्यचिंतामणिमें स्थान२ पर शृंगार रस भरा पड़ा है। स्त्रियोंके नखसे लेकर शिखा तकका वर्णन तो कई स्थानोंपर सीमासे भी बाहर है। लेखके विस्तार भयसे यहां उद्धरण नहीं देरहा हूं।

यशस्तिलक चम्पूमें तो उक्त विषयका वर्णन अपने ढंगका अपूर्व है ही। साथ ही षड् ऋतुओंका वर्णन करते हुए तो कविने इतना तक लिख डाला है कि अमुक ऋतुमें इस....प्रकारकी और अमुक ऋतुमें इस....प्रकारकी रामाके साथ रमण करनेसे ही योगी जनोंका जीवन धन्य होता है।

यहांपर कोई पाठक न तो यह समझें कि उक्त कथनसे मेरा अभिप्राय उक्त महाकवियोंके प्रति घृणा प्रगट करनेका है। और न यह ही समझें–कि साहित्यमें इस शृङ्गार रसका वर्णन करना ही नहीं चाहिए–या वर्णन करना ही अनुपयुक्त है। नहीं, वह तो यदि महा काव्योंमें न हो तो साहित्य ही अधूरा रह जाता है। यहां पर तो मेरे कथनका तात्पर्य इतना ही है, कि–

इन ग्रंथोंकी रचना आजकलके समान अल्पवयस्क ब्रह्मचारी छात्रोंके पठन-पाठनके लिए नहीं हुई थी। यदि कोई शंका करे कि इन ग्रंथोंमें वैराग्य रसका भी तो वर्णन रहता है, साथ ही वैराग्यकी शिक्षा देनेवाले अनेकों धर्मशास्त्रोंका भी तो पढ़ना साथमें होता है, फिर यह शृङ्गार रसका वर्णन क्या खराबी पैदा कर सकता है? इसका उत्तर यह है कि प्रथम तो "हेये स्वयं सती बुद्धिर्यत्ने-नाभ्यसती शुभे" अर्थात्–बुरे काममें बुद्धि जल्दी प्रवृत्त होती है। किंतु शुभ काममें यत्न करनेपर भी नहीं। दूसरे आजकलका वातावरण ही इतना दूषित होगया है कि उससे मनुष्यका सदाचारी रहना अशक्यसा होरहा है। तीसरे हमारी संस्थाओंकी लाईब्रेरियोंमें ऐसे अनेकों गंदे उपन्यासोंका संग्रह रहता है कि पढ़नेवालोंका चित्त जिनसे बिकारी हुए बिना नहीं रहता। चौथे इनमें मासिक-पत्रिकायें भी प्रायः ऐसी ही आती हैं जिनमें हमेशा स्त्रियोंके हावभाव विलास पूर्ण अनेकों चित्र प्रतिमास प्रकाशित होते रहते हैं। जैसे कभी मुग्धा नायिकाका, तो कभी विप्रलब्धाका, आदि। पांचवें इन पत्रिकाओंमें कभी २ बहुत ही अश्लील, छात्रोंके लिए सर्वथा अनुचित है। चित्र और लेख छपा करते हैं। अभी कुछ दिन पहले एक प्रसिद्ध मासिकपत्रिकामें 'चुम्बन' विषयका लेख छपा था, जिसमें चुम्बन योग्य स्थानोंका एवं चुम्बन करनेके समय आदिका स्पष्ट उल्लेख था, उसीमें एकबार 'कामशास्त्रके जाननेकी आवश्यकता' आदिका प्रतिपादक लेख निकला था। ये सब बातें गृहस्थोंके लिए उचित कही जासकती हैं न कि अबोध और ब्रह्मचारी छात्रोंके लिए।

पाठक स्वयं विचारें कि पढ़नेकी पुस्तकोंमें शृङ्गाररस, लोक व्यवहार सिखानेवाली पुस्तकोंमें शृङ्गाररस और मनोविनोद करनेकी पत्रिकाओंमें भी शृङ्गार रस, इन सबका मिलकर छात्रोंपर कितना बुरा प्रभाव पड़ सकता है। शायद कोई यह समझें कि ये सब बातें आपकी ही कपोलकल्पनायें हैं सो नहीं, मैं अपने वर्षोंके अनुभवपर इस बातको दावेके साथ कहता हूं कि मैंने छात्रोंको पढ़नेके समय मनोविनोद और भ्रमणके समय उक्त प्रकारके साहित्यका वैसे गन्दे लेखोंका और उन अश्लील चित्रोंका ही अध्ययन एवं अनुभवन करते हुए पाया है। और इसी ही कारणसे ऐसे अनेकों छात्रोंको जिनका कि प्रवेशिकामें मस्तिष्क परिष्कृत, बुद्धि प्रखर, एवं शारीरिक बल सुदृढ था, उनका विशारद और शास्त्रीय कक्षामें पहुंचने पर मस्तिष्क विकृत, बुद्धि प्रतिभा हीन एवं शरीर अत्यंत निर्बल पाया गया है। जिन छात्रोंको प्रारम्भमें होनहार माना जाता था, अन्तमें उनको ही सबसे चरित्रहीन एवं निःकाम पाया है।

पाठकोंने इस बातका भी अनुभव किया होगा कि जिस खेलने कूदनेके समयमें, अंग्रेजी पढ़नेवाले छात्र क्रिकेट, फुटबाल, हॉकी वगैरह खेलकर अपने शरीरको सुदृढ़ बनाते हैं उसी समयमें हमारे संस्कृत पढ़नेवाले छात्र उक्त गन्दे साहित्यसे मनोरंजन कर ब्रह्मचर्य-भंजन किया करते हैं (!)

(नोट–लेखककी यह कल्पना ठीक नहीं है। कारण कि संस्कृतके छात्रोंकी अपेक्षा इंग्रेजी पढ़ने वाले छात्र कम असदाचारी नहीं होते हैं। लेखकका नियम एक विभागके लिये सर्वथा लागू नहीं होता।)

क्योंकि जब गन्दे साहित्यसे मनमें विकार पैदा होता है, तो इंद्रियोंमें उत्तेजना होना स्वाभाविक है और इंद्रियोंकी उत्तेजनाके साथ ही शरीर-वेगका शिथिल होना, फिर क्रमशः स्वप्न–दोषका होना आदि बातें भी स्वाभाविक ही हैं। और यही सब छात्रोंके अधःपतनके मुख्य कारण हैं जिससे आगे चलकर छात्र गुप्तरूपसे हस्तमैथुन, गुदा–मैथुन आदि दुष्कर्मोंमें प्रवृत्ति कर बैठता है। सूक्ष्म दृष्टिसे विचार करनेवालोंको अनेकों उदाहरण इस प्रकारके मिल सकेंगे। इसलिये इस विषयको आगे न लिखकर यहीं पूर्ण करता हूं।

शिक्षा-समस्या।

लौकिक शिक्षा।

(५)

(ले–पं० हीरालालजी शास्त्री, विनोदभवन–उज्जैन)

लौकिक या व्यवहारिक शिक्षा भारतवर्षके लिए अब किस प्रकारकी होना चाहिये, इस विषयपर रा०ब० प्रिन्सिपल लज्जाशंकर झा बी०ए० रिटायर्ड आई० ई० एस०ने स्वराज्य और शिक्षा नामक एक पुस्तक निर्माण की है जिसमेंका एक आंशिक किन्तु विस्तृत लेख हिन्दीमें अनुवादित होकर इसी वर्षकी अगस्तकी माधुरीमें प्रकाशित हुआ है। उसमें विद्वान् लेखकने लौकिक शिक्षा संबंधी प्रायः सभी पहलुओंपर विद्वत्तापूर्ण विवेचन किया है। इसलिये इस विषयमें अपनी ओरसे कुछ भी न लिखकर उनके ही लेखका आवश्यक सार उद्धृत करदेता हूं। उद्धृत अंशसे मेरेही नहीं, किंतु अनेकों विद्वानोंके विचार मिलेंगे। इसलिये उन्हींके ही शब्दोंको उद्धृत करना ही मैं श्रेष्ठ समझता हूं।

बहुत कुछ प्रारम्भिक कथन करनेके बाद आप लिखते हैं ××× कि मैं अपने पाठकोंका ध्यान स्कूलके कार्यकी ओर आकृष्ट करना चाहता हूं। 'स्कूल' शब्द यहां विस्तृत अर्थमें प्रयुक्त हुआ है। जिसके अन्तर्गत कालेज आदि सभीको समझना चाहिए।

शिक्षाका उद्देश्य उठती हुई संततिको उसके भावी जीवनके योग्य बनानेका होना चाहिये। यदि वह पुराने प्रकारके जीवनके ही योग्य बनाई गई और भावी जीवनका बिलकुल ख्याल न रक्खा गया तो उसका भविष्य कदापि सुखमय नहीं होसक्ता। मान लीजिए किसी मनुष्यको हाथी, ऊँट अथवा बैल हांकनेमें केवल इस लिए निपुण कर दिया गया है कि पुराने समयमें इनकी आवश्यक्ता थी। परन्तु उसको साईसिकलपर चढ़ना अथवा हवा, पानी, तेल और बिजलीके बलका उपयोग नहीं सिखाया गया है, तो उसे जीवनमें सफलता प्राप्त करनेकी क्या आशा है? बहुधा इसका परिणाम शोचनीय होता है। प्रतिवर्ष केवल इसी कारण कितनी दुर्घटनायें होती हैं कि पैदल चलनेवाले लोग मोटर ड्राइवरके इशारोंको नहीं समझ सक्ते, अथवा घरके लोग बिजलीके प्रयोगके प्रारम्भिक नियम नहीं जानते। आधुनिक आवश्यक्ताओंसे अनभिज्ञ लोग अन्य अग्रसोची लोगोंके सामने जीवन संग्राममें किस प्रकार ठहर सक्ते हैं? वह राज्य कितने दिनों ठहर सकता है जो इस बातपर जोर दें, कि उसके सैनिक खड्ग अथवा धनुर्विद्यामें निपुण होजाय, परन्तु रायफल, मशीनगनों, तोपों, जहाजों आदिके चलानेसे कुछ भी वास्ता न रक्खें। और यह कहें कि हमारे बापदादोंने इनका उपयोग कभी नहीं किया, पुरानी रूढ़ि कैसे बदलें?

××× भारतवर्षके इतिहासको देखनेसे पता चलता है कि केवल इसी दोषके कारण हिन्दूजाति तथा राज्योंको कितनी बार विपत्तियां झेलनी पड़ी हैं–इसलिये नहीं, कि वे वीरता अथवा चारित्रमें किसी प्रकार कम थे, परन्तु इसलिए कि वे समयकी आवश्यकताओंके अनुसार कार्य करना नहीं जानते थे, मार खागए। आक्रमणकारी सैनिक बंदूकों तथा तोपोंसे सजे हुए आते हैं, परन्तु सामना करनेवाले हाथियोंपर चढ़कर तलवार और बर्छियोंके साथ पहुंचते हैं।

दूरसे लड़ना हिंदू लोग बहादुरीका काम न समझते हों, परन्तु साथियोंपर लदे हुए तलवार व बर्छीधारी सिपाही, बन्दूक और तोपवालोंका सामना कर ही क्या सकते हैं। जीवन संग्राम अथवा जीवन होड़के नियम कितने ही कठोर और निष्ठुर भले ही कहे जांय परन्तु उनमें कमी किसीकी रियायत नहीं होसकती। जो लोग आधुनिक जीवन अथवा यों कहिए कि भावी जीवनकी आवश्यक्ताओंके अनुसार अपने जीवनको नियमित करलेनेमें असमर्थ हैं उन्हें ठोकर खानी ही पड़ेगी।

अतएव जो शिक्षा हम अपने बच्चोंको देना चाहते हैं, उसका उद्देश्य उन्हें केवल वर्तमान जीवनके लिए ही नहीं अपितु भावी जीवनके लिए भी जिसमें वे संभवतः बड़े होकर प्रविष्ट होंगे–योग्य बनानेका होना चाहिए। शिक्षा शास्त्रियोंका यह कर्तव्य है कि वे समाजशास्त्रियोंकी राय लेकर इस बातका निर्णय करें कि नवीन संततिको शिक्षा संस्थाओं द्वारा किस प्रकारके जीवनके लिए तैयार किया जाय। भारतीय जीवन संग्राममें शीघ्रताके साथ भयानक परिवर्तन होता चला जारहा है।

मेरे जीवनकालमें बड़े बड़े परिवर्तन होगए हैं। यदि अपने युवक मित्रोंको अपने लड़कपनके दिनोंकी कहानियां सुनाऊं, तो वे उन्हें स्वप्न देशकी कहानियोंके समान लगेंगी। परन्तु आजकल और भी शीघ्रताके साथ परिवर्तन होरहे हैं। हम लोग उन महान दिनोंमें रह रहे हैं, जबकि शताब्दियोंकी यात्रा वर्षोंमें तय की जारही है। ऐसे समयमें शिक्षकोंका उत्तरदायित्व वास्तवमें बहुत ही बड़ा है। उनको दत्तचित्त होकर इन प्रश्नोंपर विचार करके शिक्षाप्रणालीको उचितरूप देना चाहिये। उनका काम अब चुपचाप पुराने ढंर्रपर ही चलनेसे नहीं बन सकता।

विचार करनेकी बात यह है कि भावी जीवनके लिये किस प्रकारकी शिक्षा आवश्यक होगी, समयके साथ और क्या परिवर्तन होना संभव है, इस बातपर विचार करना आवश्यक नहीं। परन्तु इतना निश्चित है कि जीवन प्रजातंत्रीयरूप धारण कर रहा है। इसलिये शिक्षालयका उद्देश्य उदीयमान सन्ततिको स्वराज्यके जीवनके ही योग्य बनानेका होना चाहिये। उसका कार्य उनगुणोंको विकसित करनेका होना चाहिये, जो मनुष्यको स्वतंत्र देशमें रहनेके लिये तथा देशकी उन्नतिमें सहायक होते हैं।

ये गुण क्या हैं? अच्छे कुलमें जन्मका होना धनपूर्ण मंजूषा प्राप्त होना, एकड़ों लम्बी चौड़ी भूमिका स्वामित्व अथवा आत्मकेन्द्रित विद्वत्ता इसमें सहायक नहीं होसक्ती है। क्या समाजसे विरक्ति, साम्प्रदायिक दर्प, अथवा मूक पांडित्य होनेसे मनुष्यको समाजमें कोई स्थान भविष्यमें मिल सकता है? यह संभव है कि रुपयेवाला कुछ समयके लिए सामने आजाय परन्तु वह बहुत दिनों तक नहीं टिक सकता और वह बहुधा एक कठपुतलेकी भांति माना जायगा। रंगमंचके व्यवस्थापक बहुधा इन कठ पुतलोंपर नाम बढ़ानेका लोभ देकर रुपया ऐंठने अथवा अन्य किसी प्रकारके कार्यसाधनके लिए दृष्टि रखते हैं।

प्रजातंत्र राज्यमें वास्तविक सफलता प्राप्त करनेके लिये यह आवश्यक है कि मनुष्य भाषण अथवा लेखद्वारा अपने विचार स्पष्टतः प्रकट कर सके।×××

इसके बाबत बहुत कुछ लिखनेपर प्रिंसिपल सा० लिखते हैं ×× कि शिक्षालयोंका एक लक्ष होना चाहिए कि वे अपने विद्यार्थियोंको व्याख्यानों, लेखों अथवा चित्रकला द्वारा भाव व्यक्त करना सिखावें। निबंध कलापर विशेष ध्यान देना चाहिए। पुराने चालकी बेढ़ंगी सारहीन ड्राइंगकी जगहपर ऐसी ड्राइंगकी शिक्षा देनी चाहिए जो बच्चोंको चित्रों द्वारा अपने भाव प्रकट करना सिखावे। भाषण कलामें तो उन्हें नियमित रूपसे अभ्यास करना चाहिए।

इसके बाद लेखक महोदय लेखन एवं वक्तृत्व कलाके बाबत सदृष्टांत बहुत कुछ लिखनेपर लिखते हैं कि—

हिंदुस्तानके भावी नागरिकको अंग्रेजी भाषाकी अपेक्षा हिंदुस्थानी भाषाओं पर अधिकार प्राप्त कर लेना अधिक आवश्यक होगा। जो अपने भावोंको अपनी ही भाषामें स्वतंत्रतापूर्वक नहीं प्रगट कर सकेगा। उसकी उपयोगिता सीमित रहेगी और उसके लिए सार्वजनिक जीवनमें उन्नति करनेकी कोई आशा न होगी।×××

इसके बाद आगे चलकर आप लिखते हैं कि

"दिनोंदिन इस बातकी अधिकाधिक आवश्यकता बढ़ती जा रही है कि जनताको उचित शिक्षा दी जाय।××× पहले हमें अपने स्वामियोंको शिक्षित करना है।×× जबतक हम उनको अपनी ओर न कर सकेंगे तबतक हमारे प्रस्तावोंका कार्य रूपमें परिणत होना असंभव है। जनताको शिक्षा देना ऐसा सरल कार्य नहीं है जैसा कभी२ समझा जाता है। बहुधा इसमें बड़ी दिक्कतें उठानी पड़ती हैं। शिक्षकको वास्तवमें बहुत ही सहनशील तथा उद्योगी होना चाहिये। जनताके समक्ष केवल एक दोबार ही अपना मनौचित्य प्रगट करना पर्याप्त नहीं होता।

अंग्रेजीका यह कथन कि "Knock and the door shall Open Unto you" कि दरवाजा खटखटाइये और वह तुम्हारे लिए खुल जायगा। सार्वजनिक जीवनमें बहुत ही कम ठीक बैठता है। दरवाजा खटखटाते जाइए, जनताकी उदासीनता, अवज्ञा तथा तिरस्कारका सामना करनेसे न घबड़ाइए, यहांतक कि मार खाने तकके लिए तैयार रहिए, तब कहीं जनता आपकी बातपर ध्यान देगी, और कदाचित् आपके मतको स्वीकार करेगी। आपको बुद्धिमानोंको समझाना पड़ेगा, मूर्खोंको समझाना पड़ेगा और रास्ता चलते हुए आदमियोंको समझाना पड़ेगा। और तब भी, यदि आपके वर्षोंके अनवरत परिश्रमके बाद जनताने आपकी किसी बातको ग्रहण भी करलिया, तो यह बात भी देखनेमें आवेगी कि उसका श्रेय किसी दूसरे ही आदमीको दे दिया गया।

लोकसेवा हंसीकी बात नहीं है, इसके लिए आपको बिना किसी प्रतिफलकी आशा किए हुए वर्षोंतक बराबर कार्य करनेके लिए तैयार रहना पड़ेगा। सारी कठिनाइयोंको अर्थात् उपेक्षा, विद्वेष, परान्मुखता, विश्वासघात आदिको बराबर सहते हुए आपको सत्यके लिए युद्ध करना पड़ेगा।×××

अतएव स्कूलोंका दायित्व इसी प्रकारके व्यक्तियोंको उत्पन्न करनेका होना चाहिए।

स्कूलोंकी शिक्षाका एक लक्ष्य यह भी होना चाहिये कि वह विद्यार्थियोंके चित्तमें इस बातको अंकित करदे, कि विरोधी व्यक्ति शत्रु नहीं होता। भविष्यमें वह मित्र भी बन सकता है। अतः उन्हें दृढ़ता तथा संलग्नताके साथ किंतु निर्लेप युद्ध सिखाया जाना चाहिए। इसके सर्वोत्तम साधन सहकारी खेल हैं। किसी न्याय्य होड़ाहोड़में हार जानेपर उन्हें शर्म नहीं खाना चाहिये। विद्यार्थियोंको अपनी पराजय भलमनसाहतके साथ स्वीकृत कर लेना सिखाया जाना चाहिए। और दूसरीबार फिर विजय प्राप्त कर लेनेके लिए भरसक प्रयत्न करना भी सिखाया जाना चाहिए। उन्हें विरोधियोंकी अच्छाइयोंको ग्रहण करना सीख लेना चाहिए। सफलता आसमानसे नहीं उतरती। विपर्यय, पराजय तथा नैराश्यका निरंतर सामना रहता है।×××

इसके आगे आप लिखते हैं कि बुद्धिमानी तो इसीमें है कि विरोधियोंको अपनी बात कहनेके लिए पूरा अवसर दिया जाय। यदि वे न्याययुक्त नहीं, अथवा अत्यधिक कटु तथा द्रोहशील हैं तो उतना ही तुम्हारे लिए अच्छा। चतुर व्यक्ति विरोधियों द्वारा कहीं गयीं युक्तिपूर्ण बातोंसे लाभ उठाएगा। परन्तु यदि उसके विरोधी अत्यधिक द्रोह कटुता अथवा अन्यायकी बात करेंगे तो वह मन ही मन प्रसन्न होंगे।

× × × राजनीतिके संसारमें लोगोंसे सफलता पूर्वक व्यवहार करनेका कार्य रहता है। जो मनुष्य किताबका कीड़ा होता है, वह काल्पनिक और अव्यवहारिक होनेके कारण प्रायः ऐसा करनेमें समर्थ नहीं होपाता परन्तु व्यवहारिक मनुष्य सफलता पूर्वक यह कार्य कर सकता है। इसलिए स्कूलोंको ऐसे उपायोंका विकाश करना चाहिये, जिनसे बच्चोंमें सामाजिक तथा व्यवहारिक जीवनका प्रादुर्भाव हो।

ऐसे उपायोंके कुछ उदाहरण यह हैं—जटको-त्सव, सहयोग समितियां, स्काउट सम्बंधी खेल, तथा सम्मेलन, धार्मिक तथा सामाजिक उत्सव आदि। मुख्य उद्देश्य यह होना चाहिये कि विद्यार्थियोंको सहकारिता तथा संयोजनमें अभ्यास कराया जाय। किसी बातके किताबी ज्ञानकी अपेक्षा उस बातको 'करने' का ही उद्देश्य होना चाहिये।

विद्यावृद्धिकी अपेक्षा चारित्र निर्माणका कार्य कहीं अधिक महत्वपूर्ण है। हमारे शिक्षालय अध्ययनको अत्यधिक महत्व देते हैं। अधिकारीगण, जनता तथा माता-पिता स्कूलके कार्यका अनुमान परीक्षाफल देखकर करते हैं। बच्चोंके चारित्रकी ओर किसीका ध्यान नहीं जाता। परन्तु भावी नागरिकोंका चारित्र निर्माण ही मुख्य उद्देश्य होना चाहिए। ×××दूसरा महत्त्वपूर्ण पक्ष यह है कि विद्यार्थियोंको रुपये पैसेमें ईमानदारी और कार्यकुशलतामें अभ्यास कराया जाय।

आप चाहे जहां जाइए-किसी रियासतमें, व्यावसायिक कार्यालयमें, म्यूनिसिपालिटी अथवा डिस्ट्रिक्ट बोर्डमें, सर्वत्र ही आपको ××× बहुधा रुपये पैसेके मामलेमें लचीली प्रवृत्ति मिलेगी। कुछ आदरणीय अपवादोंको छोड़कर दस्तूरी अथवा बख्शीशकी मांग सर्वत्र ही फैली हुई है। यहांतक कि ऊंचे पदाधिकारी भी अपनी मुट्ठी गरम करना चाहते हैं। बेईमानीसे घृणा पैदा करना मानों कोई बुरी बात ही नहीं रह गई है।×××

पर यह कोई नहीं सोचता, कि उन अधिक गरीब और कंगाल व्यक्तियोंकी क्या दशा होती होगी, जो बराबर छूटे जारहे हैं। अपनी समाजका अंतःकरण ऐसा होगया है कि जो मनुष्य खाने पीनेके सम्बंधमें जातीय नियमोंका पालन नहीं करता उसकी आफत कर डाली जाती है। परन्तु उस मनुष्यको जो किसी विधवा अथवा दीन अनाथको लूटकर अमीर बन गया हो या जिसने अपने विश्वासी मालिकके साथ छल किया हो। अथवा किसी लोक द्रव्यपर जिसने हाथ साफ किया हो, उस वास्तविक धूर्तको किसी प्रकारकी सामाजिक प्रताड़नाका सामना नहीं करना पड़ता। समाजमें उनकी स्थिति जैसीकी तैसी बनी रहती है।

ऐसे कितने मनुष्य और नेता हैं जो किसी कार्यको मुट्ठी गरम करनेके लिए नहीं, किंतु श्रद्धावश करते हैं। ऐसे लोगोंका मिलना कठिन है, जो अपने हिसाब में सफाई रक्खें।××× इसलिये जबतक हम रुपये पैसेके मामलोंमें ईमानदारीके उच्चतर भावोंकी अभिवृद्धि न करलें....और समाज, बेईमानीके लिये उसी सख्तीसे दण्ड न दे जैसा वह खानेपीनेके बंधे नियमोंका उल्लंघन करनेके लिये देता है। यह पर्याप्त नहीं कि कोई पदाधिकारी अथवा [illegible] केवल ईमानदार हो, परन्तु इन सबका और प्रत्येक नागरिकका यह कर्तव्य होना चाहिये कि बेईमानी और आलस्यके लिये उचित दण्ड दिया जाय। भारतीय प्रबंधवाली संस्थाएं और कार्यालय ठीक तरहसे तभी चल सकते हैं, जब जनताके अन्तःकरणमें दूसरोंके रुपयोंके प्रति निष्कण्टता और सचाईकी एक उच्च भावना जागृत होजाय। (अपूर्ण)

शिक्षा-समस्या।

लौकिक शिक्षा।

(६)

(ले०-पं० हीरालालजी शास्त्री, विनोदभवन-बड़ौत)

भारतवर्ष उदार पुरुषोंसे भरा है, और यदि उन्हें इस बातका विश्वास होजाय कि उनके रुपयेका ठीक उपयोग किया जायगा तो सार्वजनिक कार्योंके लिये रुपया सरलतासे मिल सकता है। परन्तु हमारी शिक्षा संस्थायें उदीयमान संततिको उस आर्थिक सदाचार सिखानेके लिये क्या कर रही हैं?

व्यावसायिक प्रवृत्तियों, जैसे चिट्ठियोंका जवाब जल्दी देना, ठीक समयपर हिसाब दे देना, शीघ्र ही कार्यको कर डालना, अपनी बातका सच्चा होना, किसी कार्यको उत्तम प्रकारसे करनेका हौसला रखना आदिमें बालकोंको अभ्यास करना भी स्कूलका एक मुख्य कार्य होना चाहिये।

××× इससे आगे आप लिखते हैं कि 'हमारे पारस्परिक व्यवहारमें एक ऐसा मिथ्याभाव फैला हुआ है जिसके कारण हम किसी खरी बातको स्पष्ट नहीं कह सकते। ××× ऐसे व्यक्ति बहुत कम मिलते हैं जो 'न' करनेकी हामें साफ साफ इन्कार करदें। 'न' कह देना चाहे बुरा ही जान पड़े, परन्तु इस प्रकारकी उज्वलता व्यर्थ ही आशा देनेसे कहीं अच्छी है।×××

आत्मरक्षाकी शिक्षा नागरिकताकी शिक्षाका एक आवश्यक अंग है। जो मनुष्य अपनी रक्षा नहीं कर सकता, या कमजोरको ताकतवरसे नहीं बचा सकता, अथवा विपत्तिमें पड़े हुए अपने पड़ोसीकी सहायता करनेके लिए किसी खतरेका सामना नहीं कर सकता, वह भावी जीवनमें नागरिक होनेके योग्य नहीं। खतरेमें पड़े लोगोंको बचाते हुए प्राण देदेनेवाले श्री गणेशशंकर विद्यार्थीजीके चमत्कार पूर्ण दृष्टांतसे हमें यही पता चलता है कि औसत दर्जेके खाते पीते अथवा शिक्षित सज्जन शारीरिक संकटकी अवस्थामें कितने असहाय होते हैं। दोष इन लोगोंका इतना नहीं जितना कि उन्हें दीगई शिक्षाका होता है। उन्हें आत्मरक्षाकी पौरुषी कलाएं सिखलायी ही नहीं जातीं। बहुतसे शहरोंमें तो व्यवसायी गुंडे रईस लोगोंको शारीरिक पीड़ाकी धमकी देकर उनसे रुपये ऐंठते हैं और मजेमें रहते हैं। यदि लोग लड़नेके लिए और यदि आवश्यकता पड़े तो कष्ट उठानेके लिए भी तैयार होजाय तो क्या उन गुंडोंकी ऐसी हिम्मत पड़ सकती है?

अमेरिकके एक्टिंग गवर्नर सर ई० हाटसनको ही देखिए कि वह किस साहसके साथ उस नवयुवकसे भिड़ गए थे, जोकि उन्हें गोली मारदेना चाहता था।

क्या उनके इस प्रकार लड़नेमें उनकी हत्या चली गई! ××× अतएव अपनी तथा संकटमें पड़े हुए दूसरे लोगोंकी रक्षा करना प्रत्येक व्यक्तिकी शिक्षाका अंग होना चाहिये। लाठी चलाना बाक्सिंग, जुजुत्सु तथा ऐसे ही आत्म-रक्षाके कई पौरुषेय साधन हैं, जिनपर स्कूलोंका कहीं अधिक ध्यान जाना चाहिये।

विद्यार्थी सम्प्रदायको नागरिक कर्तव्यों तथा नागरिक सद्भावका सिखलाना भी आवश्यक है। कितनी बार हमलोगोंको सड़कोंपर पड़े हुए पत्थर, व्यर्थ ही नलसे बहता हुआ पानी अथवा फर्शपर पड़े हुए रपटीले छिलके मिला करते हैं, परन्तु हममेंसे कितने ऐसे हैं, जो दूसरोंकी इन असुविधाओंको दूरकर देना अपना कर्तव्य समझते हैं? नागरिक सद्भावकी कमीके ऐसे ही बहुतसे उदाहरण दिये जासकते हैं।

×××इसलिए हममें नागरिक सद्भावका भी विकाश होना चाहिए। यही नहीं, स्कूलोंके छात्रोंमें नागरिक सद्भावके अन्य रूपोंको भी उत्पन्न करनेका प्रयत्न करना चाहिए। यथा वोटर और प्रतिनिधिका सत्सम्बन्ध, वादविवादकी पद्धति और प्रश्नोंका निर्णय मेम्बरों और अफसरोंका सम्बन्ध आदि। अतएव इसके लिए सबसे अच्छा साधन यही है कि स्कूल परिषद और सभाएं निर्मित की जांय, जिससे लड़कोंको यह ज्ञात होजाय कि विशुद्ध प्रजातंत्र पद्धति द्वारा संस्थाओंका प्रबन्ध किस प्रकार किया जाता है। इनको चलानेका भार बालकोंपर ही रहे।

भारतीय लोगोंमें बहुतसे सद्गुण हैं, परन्तु दुर्भाग्यसे नियमभावका उनमें सर्वथा अभाव है। जिस प्रकार लोग मेलोंमें, घाटोंपर अथवा रेल्वे स्टेशनोंके टिकट घरोंपर धक्का-मुक्की करते हैं और ताकतवर तथा रौबवाला फायदेमें रहता है, उससे यही प्रगट होता है कि लोगोंमें स्वार्थकी मात्रा बहुत अधिक है। अतएव जनतामें इस सद्भावके विकसित करनेकी आवश्यकता है कि प्रबल और प्रभावशालीका यह कर्तव्य होना चाहिए, कि वह लंगड़े लूले तथा अंधेकी सहायता करे और उन्हें सबसे पहिले अवसर दे। स्कूलोंका भी यह कार्य होना चाहिए कि वे उत्तिष्ठमान संततिको नियमशीलता तथा शौर्यगुणमें अभ्यस्त करावें। स्कूलोंमें जो ड्रिल कराई जाती है उसका उद्देश्य उस क्लैमें ड्रिल करा... ही नहीं, किन्तु उनकी सभी गतियोंको व्यवस्थित एवं नियमित कराना होना चाहिये।(अपूर्ण)

शिक्षा समस्या।

(६)

काव्य-साहित्य-समीक्षा।

(लेः-पं० हीरालालजी शास्त्री न्यायतीर्थ-उज्जैन)

उपसंहार।

साहित्यकी समीक्षा प्रारम्भ करते हुए यह भूल ही गया कि प्रारम्भसे ही पढ़ाये जानेवाले हितोपदेशकी लीलावती नामकी वणिक् पुत्रीकी कथा ही कितनी विषैली है, जिसके यहां उद्धरणकी आवश्यकता नहीं है।

हालमें परीक्षालयोंने चन्द्रप्रभके स्थानपर मुनिसुव्रतकाव्य, और जीवंधरचम्पूके स्थानपर पुरुदेवचम्पूको बदला है। दोनों पुस्तकोंके सामने न होनेसे उनके उद्धरण नहीं दिए जासके परन्तु वे दोनों ग्रंथ भी उक्त रससे वंचित नहीं हैं।

'तो फिर साहित्यका क्रम क्या रहे?'

उक्त समीक्षाके बाद यह प्रश्न स्वभावतः उठता है। जिसके लिए इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि जब तक उक्त दोषसे रहित सदाचार एवं धार्मिक भावोंसे ओतप्रोत, संस्कृत उच दर्जेका ज्ञान करानेवाला संस्कृत साहित्य तैयार न हो, तबतक वर्तमानमें पढ़ाया जानेवाला साहित्य बन्द रक्खा जावे, और उसके स्थानपर पंचस्तोत्र-(भक्तामर, कल्याणमन्दिर, एकीभाव, विषापहार और जिनचतुर्विंशतिका), पं० आशाधर प्रणीत सटीक जिनसहस्रनाम, सटीक अनगार धर्मामृत आदि ग्रन्थ पढ़ाये जावें। शायद पाठक पंचस्तोत्रका नाम सुनकर चौंके पर ध्यान रहे कि भावोंकी प्रौढ़ताके साथ उच दर्जेकी भाषामें ही उक्त स्तोत्रोंकी रचना हुई है। समास युक्त लम्बे २ पद एवं नवीन २ धातुओंके प्रयोग भरे पड़े हैं। उदाहरणार्थ—

भक्तामर।

गम्भीरतारस्वपूरितदिग्विभागस्त्रैलोक्यलोकशुभसंगमभूतिदक्षः। सद्धर्मराजजयघोषणघोषकः सन्, खे दुन्दुभिर्नदति ते यशसः प्रवादी ॥ ३२॥

अम्भो निधौ क्षुभितभीषणनक्रचक्रपाठीनपीठभयदोल्वणवाडवाग्नी। रङ्गत्तरंगशिखरस्थितयानपात्रास्त्रासं विहाय भवतः स्मरणाद्व्रजन्ति ॥ ४४॥

कल्याण मन्दिर।

यद्वन्दृजितघनौघमदभ्रभीम,
भ्रश्यत्तडिन्मुसलमांसलघोरधारम्।
दैत्येन मुक्तमथ दुस्तरवारि दध्रे,
तेनैव तस्य जिनदुस्तवारिकृत्यम् ॥ ३२॥

इत्थं समाहितधियो विधिवज्जिनेन्द्र,
सान्द्रोल्लसत्पुलककंचुकिताङ्गभागाः।
त्वद्बिम्बनिर्मलमुखाम्बुजवद्धलक्ष्म्या,
ये संस्तवं तव विभो रचयन्ति भव्याः ॥४३॥

एकीभाव।

देव स्तोतुं त्रिदिवगणिकामण्डलीगीतकीर्ति,
तोतुत्तित्वां सकलविषयज्ञानमूर्त्ति जनो यः।
तस्य क्षेमं न पदमटतो जातु जेहूर्त्ति पन्था-
स्तत्त्वग्रन्थस्मरणविषये नेष मोमूर्त्ति मर्त्यः॥२३॥

विषापहार।

स्वबुद्धिनिःशासनिमेषभाजि
प्रत्यक्षमात्मानुभवेऽपि मूढः।
किं चाखिलज्ञेयविवर्त्तिबोध-
स्वरूपमभ्यक्षमवैति लोकः ॥२२॥

जिनचतुर्विंशतिका।

नृत्यत्स्वर्दन्तिन्ताम्बुरुहवननटल्लाकनारीनिकायः।
सद्यस्त्रैलोक्यया भोत्सवकरनिनदातोद्यमाद्यन्निलिम्पः॥
हस्ताम्भोजातलीलाविनिहितसुमनोदामरम्यामरस्त्री-
काम्याः कल्याणपूजा विधिषु विजयते देव देवागमस्ते॥

विनदमरकान्ताकुन्तलाक्रान्तकान्ति-
स्फुरितनखमयूखद्योतिताशान्तरालः।
दिविजमनुजराजव्रातपूज्यक्रमाब्जो,
जयति विजितकर्मारातिजालो जिनेन्द्रः॥१८॥

इस स्तोत्रके प्रायः सभी ही पद्य इसी ही प्रकार लंबे २ समास युक्त हैं। यदि इन्हें भलेप्रकार समास कोष आदिकी व्याख्या पूर्वक पढ़ा जावे तो निःसंदेह संस्कृतका उत्तम ज्ञान होसकता है और धार्मिक स्तोत्र भी कण्ठस्थ होवेंगे।

पं० आशाधरजीका जिनसहस्रनाम तो व्युत्पत्तिके लिहाजसे अपूर्व ही ग्रन्थ है। एक २ शब्दकी ऐसी मनोहर व्युत्पत्तिपूर्वक व्याख्या की गई है कि देखकर हृदय प्रसन्न होजाता है। दुःख है कि ग्रन्थके सामने न होनेसे उद्धरण पाठकोंके सामने नहीं रख सका। इसे शीघ्रही प्रकाशित कराकर परीक्षामें अवश्य ही रख देना चाहिये जिससे छात्रोंको व्याकरण व साहित्यका ही उत्तम ज्ञान हो सके।

और उसके स्थानपर संस्कृत पद्मपुराण अथवा हरिवंशपुराण जैसे अत्यल्प शृंगार रसवाले ग्रन्थ पढ़ाये जावें। साथ ही संस्कृतसे हिन्दी और हिन्दीसे संस्कृत बनानेकी ओर पूर्ण ध्यान दिया जावे, जिससे संस्कृत भाषामें प्रौढ़ता प्राप्त होसके। यदि उचित समझा जावे तो संस्कृत कालेज-इंदौरके प्रिन्सिपल श्रीपाद शास्त्री द्वारा रचित 'महाराणा प्रताप' वगैरह संस्कृत ग्रन्थ भी पढ़ाये जावें। ये ग्रन्थ छात्रोंके हितार्थ ही लिखे जानेसे शृंगार रससहित हैं। महिकाव्य भी शृंगार रहित होनेसे कोर्समें रखनेयोग्य है।

अथवा हाईस्कूलोंमें जैसे चुने हुए श्लोकोंवाली संस्कृतकी पुस्तकें पढ़ाई जाती हैं, उसी प्रकार उक्त महाकाव्योंमेंसे भी छात्रोंके योग्य अंश निकाल कर पाठ्य पुस्तकें प्रकाशित करा दीजावें। इसके लिये एक एक विद्यालय एक एक पाठ्य पुस्तकका जिम्मेवार होकर अपने यहांके पंडितोंसे ही वैसी पुस्तक तैयार कराकर छपा देवे। ऐसा करनेमें एक विद्यालयको करीब ३००)रु०का खर्चा उठाना पड़ेगा। जो कि हजारों रुपया प्रतिवर्ष खर्च करनेवाले विद्यालयोंके लिये कुछ भी कठिन नहीं है। साथ ही बिक्रीसे क्रमशः वह रकम वसूल भी हो जायगी।

यहांपर छात्रोंसे भी यह कह देना आवश्यक समझता हूं कि उक्त कथनसे वे अपने ऊपर कोई कटाक्ष या दोषारोपण न समझें; क्योंकि यथार्थ परिस्थितिके वश होकर उक्त समीक्षा की गई है। क्योंकि मुझे यह उक्त अनुभव स्वयं पढ़ते समय पढ़ाते समय ही हुआ है, और इसीसे लिखनेके लिए बाध्य हुआ हूं।

मैं अपने विद्वान पाठकोंसे भी इस विषयके परिवर्तनके लिए निवेदन करूंगा। जिससे कि छात्रोंका भावी जीवन सुख एवं शांतिमय बन सके। क्योंकि बाल्यकालमें ब्रह्मचर्यसे पतित जनोंकी यौवनमें क्या दुर्दशा होती है, उनका जीवन कितना नीरस होजाता है, इसे प्रायः सभी जानते हैं।

शायद कोई पाठक यह कहें कि जब जैन साहित्यके ग्रन्थोंमें इस प्रकार शृंगाररस भरा पड़ा है, तो अजैन साहित्यके ग्रंथ क्यों न पढ़ाये जाय! उनके समाधानके लिए इतना ही कहना पर्याप्त होगा, कि अजैन साहित्यमें अपने ग्रंथोंसे भी अधिक शृंगाररस भरा पड़ा है। उदाहरणार्थ-कुमारसंभवका अष्टम सर्ग। जिसके लिये कहा जाता है कि-शिव-पार्वतीके इसप्रकार सुरत वर्णनसे कालिदासके शापस्वरूप कोढ़ निकल आया था। इसी प्रकार जितने भी जैनेतर महाकाव्य हैं उन सबमें यही दोष घुसा हुआ है। अपने ग्रंथोंमें कमसेकम वैराग्यके अवसरपर जब पूर्ण वैराग्यका सुन्दर चित्र अङ्कित है तब उनमें वह नामको ही मिलेगा। श्रुतबोधको क्वीन्स कालेजने जो अपने कोर्समें पृथक् किया उसका एक मात्र कारण उसकी अश्लीलता ही थी। वही बात प्रथमा परीक्षासे मेघदूत हटानेके लिये भी हुई है। अजैन साहित्यकी पुस्तकोंके सामने न होनेसे उदाहरण नहीं

दिये जासके। किन्तु इतना तो स्पष्ट ही है कि कालिदासकी रचनायें शृंगाररससे ओतप्रोत हैं। नैषध, कादम्बरी एवं किरातार्जुनीयके खास २ स्थल तो शृंगारके लिये प्रसिद्ध ही हैं। और साहित्य दर्पणमें ही नायिकाओंके भेद-प्रभेद सलक्षण उदाहरणपूर्वक दिये ही गए हैं। यदि इन सबके उद्धरण देकर लिखा जावे तो एक मोटी पुस्तक ही तय्यार होजाय।

इस भ्रष्ट साहित्यके पठनसे कितने ही जीवन भ्रष्ट हुए हैं। अनेकोंके दृष्टान्त तो मेरे ही सामने हैं। एक बात तो मैं अभीतक भी नहीं भूल सका हूं कि मेघदूतके 'ज्ञातास्वादो विवृतजघनां को विहातुं समर्थः' के वाक्यसे पढनेवाले २ नवयुवक कुत्सित प्रवृत्तियोंमें फंसकर कालके गालमें पहुंचे। जिसमें एक नवयुवक मेरा साथी था और दूसरा मेरा विद्यार्थी। साथीके कूपपातसे संभवतः पाठक परिचित होंगे और दूसरा विद्यार्थी तो बेचारा गत वर्ष ही कालकवलित हुआ है। इसी प्रकार नैषध साहित्यदर्पण आदिके पढनेवाले एक श्वेतांबर स्था० साधुके गुरुने जब साहित्य पढने बाबत एक अच्छे वयोवृद्ध विद्वान्से पूंछा तो उन्होंने हंसकर उत्तर दिया कि यह संस्कृत साहित्य भोगियोंके पढनेकी वस्तु है, योगियोंकी नहीं। यदि विश्वास न हो तो अपने साधु शिष्यकी ही शक्ल देखकर निश्चय कर लो कि शरीर यक्ष्मासे पीडित एवं कितना धातु क्षीण-दुर्बल होगया है। आदि।

कहनेका सारांश यही है कि उक्त महाकाव्योंवाले संस्कृत साहित्यकी रचना प्रौढ वयवाले राजा-महाराजों, रईस उमरावों एवं सुखी भोगीजनोंके मनोरंजनके निमित्तसे हुई थी न कि संस्कृत भाषाकी ज्ञानवृद्धिके लिए।

नोट–ऊपरके कथनकी सत्यता तो काव्यतीर्थ विद्वान् ही जान सकेंगे परन्तु इतना हमें प्रसंगवश कहना पडता है कि यदि जैन व अजैन काव्यग्रन्थोंमें शृंगाररसका वर्णन छात्रोंको लेखकके अनुभवके अनुसार वास्तवमें चारित्रहीनताकी तरफ लेजानेवाला है तो जैन विद्वानोंको लेखकके लेखपर ध्यान देकर काव्य विषयमें कुछ सुधार करना चाहिये। अर्थात् जैन काव्योंमेंसे अवतरण छांट करके पठनक्रममें रक्खे जावें जिससे काव्यकी योग्यता बढ़े परन्तु चारित्रकी रक्षा होसके।

इस लेखसे विद्यार्थियोंको व विद्यालयके कार्यकर्ताओंको क्रोध भाव न लाना चाहिये। यदि लेखकका कथन अयोग्य हो तो प्रतिवाद भेजना चाहिये, हम प्रगट कर देंगे। एक विद्वानके अनुभवको प्रगट करनेसे रोकना हमने उचित नहीं समझा।

—→→▩←←—

शिक्षा-समस्या।

(७)

(लेखक-पं० हीरालालजी जैन शास्त्री-उज्जैन।)

साहित्यसे दुषित [illegible] मेरे अनुभव।

कुछ मित्रोंकी राय है कि "[illegible] पठन-पाठनसे दुराचारी होनेकी आशंका करना [illegible] नहीं है। हां, दुराचारी होते हैं, बोर्डिंगके विचित्र रहन-सहन और बदइन्तजामीसे, यह आपसे कहां छिपा है आदि, ऐसा मेरे एक हितैषी मित्रने अभी हाल ही ता० ९-७-३३ के एक पत्रमें लिखा है। इस प्रकारकी शंका प्रायः [illegible] को भी होना अनुचित एवं सभीके समक्ष [illegible] करता हूं—

[illegible] छात्रोंके दुराचारी होनेमें बोर्डिंगोंके विचित्र रहन-सहन एवं बदइन्तजामी भी कारण हैं किन्तु वह मुख्य कारण नहीं, अपितु सहकारी या निमित्त कारण मात्र हैं, पर उपादान कारण तो साहित्यमें उपवर्णित शृङ्गार-रसका विषैला प्रभाव ही है। इस विषयमें गहरी दृष्टिसे जब आप देखेंगे या छात्रोंके साथ गुप्तरीतिसे सहवास कर उनकी २४ घंटोंकी क्रियाओंका सूक्ष्म दृष्टिसे निरीक्षण करेंगे, तब मुझे विश्वास है कि आप भी मेरे विचारसे सहमत होजावेंगे। कि यह गंदा साहित्य ही वर्तमानमें दुराचारकी ओर छात्रोंको ले जानेवाला है।

मेरे मित्रका यह लिखना "कि वह (साहित्य) तो जीवनके लिए एक उपयोगी अंग है" इस वाक्यमें 'गृहस्थ' शब्द जोड़कर मैं भी मानता हूं कि वह तो गृहस्थ जीवनके लिए एक उपयोगी अंग है। यदि आप गौरसे मेरे उस साहित्यवाले लेखको देखेंगे, तो इस बातको दूसरे शब्दोंमें मैंने भी स्वीकार किया है, परन्तु गृहस्थ जीवनका आवश्यक अंग होते हुए भी वह विद्यार्थी जीवनके लिए तो घातक ही है। क्योंकि मासिक पत्रिकाओंमें स्त्रियोंके नाना प्रकारके चित्रोंके देखनेसे, तत्सम्बंधी लेखोंके पढ़नेसे एक तो वैसे ही छात्रोंका हृदय उनके पानेके लिए तड़फता रहता है, इतने पर भी जब साहित्यके पाठमें जलक्रीड़ा, वसन्तक्रीड़ा, सुरतकेलि, आलिंगनादिका खुला वर्णन पढ़ते हैं, तब उन छात्रोंके हृदयोंकी क्या गति होती होगी उसे या तो भुक्तभोगी ही जानें, या देखने सुननेवाले। विद्यार्थियोंके सम्पर्कसे दूर रहनेवाले व्यक्तियोंको इनका अनुभव नहीं होसकता। फिर भी पाठकोंको इस विषयके कुछ अनुभव सामने रखकर यह दिखानेका यत्न करता हूं कि साहित्यका कहांतक विषैला प्रभाव पड़ता है।

छात्र-जीवनके अनुभव।

(१) साहूमल पाठशालामें जब मैं पढ़ता था तब जिस दिन मेघदूतके पाठमें "ज्ञातास्वादो विवृतजघनां को विहातुं समर्थः" वाला श्लोक पढ़ाया गया, उसी ही रात्रिको हमारा एक साथी पेशाब करनेके स्थानपर एक छोटेसे नवीन आये हुये छात्रके साथ कुकर्म करते पकड़ा गया, बात [illegible] होनेपर प्रवृत्ति [illegible] घनश्यामदासजीने [illegible] पीटा [illegible] उसे [illegible] अध्यापक [illegible] शंभुनाथ [illegible] गई। जिसमें [illegible] निमित्त [illegible] व्याख्यान देकर, उसकी [illegible] दृष्टि [illegible] कारणमें वह शीशा [illegible] उसे रख लिया, परन्तु कुछ दिन बाद फिर भी उसी प्रकार कुकर्म करते हुये पकड़े जानेपर निकाल दिया गया। बहुत दिनों बाद जब कि हम लोग काम करने लगे थे, मिलनेपर उक्त आदतका कारण पूछा तो उसने स्पष्ट शब्दोंमें कहा था कि हमारा क्या दोष। दोष तो उन पुस्तकोंका है कि जिनको पढ़कर इन्द्रिय उत्तेजनासे हृदय उन्मथित होजाता है। और जिससे विवश होकर उन जघन्य उपायोंकी शरण लेना पड़ती है।

(२) जब मैं इंदौर महाविद्यालयमें पढ़ता था, तो क्या देखता हूं कि एक छात्र प्रातःकाल ४ बजे उठते ही तुरत धोती बदलने लगता है। २-१ बार योंही सरसरी दृष्टिसे पूछनेपर उसने बताया कि देखोजी ये धर्मशास्त्रके ग्रन्थ हैं, बिना धोती बदले नहीं पढ़ना चाहिये क्योंकि सोते समय पेशाब आदिके छींटे लग जाते हैं, स्वप्नदोष होजाता है आदि। मेरी समझमें कुछ भी समझमें नहीं आया कि स्वप्नदोष क्या वस्तु है? हां, समाचारपत्रोंमें इस शब्दको विज्ञापनादिसे पढ़नेपर यह अपने मनसे ही अर्थ गढ़ लिया था, कि सोते समय जो बुरे २ स्वप्न आते हैं, या किसीकी खूनखराबी करदेते हैं उसे स्वप्नदोष कहते होंगे। कुछ दिनों बाद सोकर उठते ही उसे साबुनसे धोती धोते हुए २-४ बार पाया। तब तो मुझे और भी संदेह बढ़ा और मैंने योंही धमकी देकर पूछना प्रारम्भ किया तो उसने सब बातें स्वप्नदोषकी व्याख्या करके समझाया कि स्वप्नदोष होजानेके कारण धोतीमें दाग न पड़ जावे इसलिए मैं उसे धोडालता हूं। जब मैंने कहा कि मुझे तो यह कभी नहीं होता, तुम्हें कबसे और क्यों यह रोग होगया है तो उसने स्पष्ट शब्दोंमें कहा कि साहित्यमें शृंगार रसयुक्त वर्णनोंके पढ़ने एवं उपन्यासोंके देखनेसे मेरा मन चंचल रहने लगा—इंद्रिय उन्हें जीत रहने लगी और अन्तमें इस रोगका शिकार होगया। अनेकों औषधियोंके खानेपर भी इससे पीछा नहीं छूटता आदि। जिस किसी दिन साहित्यके शृंगाररस या किसी गंदे उपन्यासको पढ़ते हुए मैं सोता हूं उसी दिन यह होजाता है। इस प्रकार मैंने एक नहीं कई छात्रोंको इस रोगका रोगी पाया आदि।

(३) अब एक अनुभव जबलपुर शिक्षामंदिरमें पढ़ते समयका लीजिए-एक छात्र अत्यन्त शान्त स्वभावका था, लोग उसे अत्यंत सच्चारित्र कहते थे। एवं 'ठंडे' नामसे पुकारा करते थे, मुझे उसके चारित्रपर-उसकी मुखाकृतिपर कुछ संदेह हुआ। मैंने उसके चालचलनको बड़ी ही गुप्तरीति एवं [illegible] साथ देखना आरम्भ किया। मैं खुफिया पुलिसकी [illegible] उसकी पूर्ण दिनचर्यापर पूरी निगाह रखने लगा। ३-४ बार अत्यंत [illegible] दबे शब्दोंमें पूछा भी, पर कुछ पतहीं [illegible] अकस्मात् एक दिन वह टट्टी होकर निकला और मैं उसीमें टट्टी फिरने गया। घुसते ही क्या देखता हूं कि वहांपर तुरन्तका निकला हुआ वीर्य पड़ा है। तब मेरा सन्देह और भी पुष्ट होगया। भोजनोपरान्त घूमते समय नाना प्रकारके छलछद्मोंसे मैंने उसे धमकाया, तो वह खुल पड़ा, कि आप किसीसे कहना नहीं। इसे हस्तमैथुनकी आदत पड़ी हुई थी, जब मैंने उसकी इस आदतका कारण पूंछा, तो उसने उत्तर दिया कि जबसे मैंने साहित्यमें स्त्रियोंके शृंगार आलिंगनादिका खुला वर्णन पढ़ा, तभीसे मेरी इन्द्रियमें उत्तेजना बढ़ती गई। यहांतक कि कभी२ तो धोतीतक पहिनना मुश्किल होगया तो विवश होकर मुझे इस उपायका अवलम्ब करना पड़ा।

आगे उस छात्रकी क्या दशा हुई होगी, सो तो भगवान ही जानें, पर इतना मैं अवश्य कह सकता हूं कि इस आदतके शिकारको तपेदिक हुए बिना नहीं रहता।

अध्यापन कालके अनुभव।

सबसे प्रथम बनारस विद्यालयमें मैं धर्माध्यापक हुआ। चूंकि मैं अकेला और एकदम पढ़कर ही निकला था, इसलिए विद्यालयके हॉलमें ही तख्तेपर सोता था। प्रायः बहुतसे छात्रोंको इसका पता नहीं था। हां, तो साहित्य रसिया कोई२ छात्र कभी२ कोई श्लोकादि गुनगुनाते हुए रात्रिमें १० बजे बाद इधरसे उधर घूमा करते थे। पहिले तो मैंने बहुत दिनोंतक इस पर ध्यान नहीं दिया। क्योंकि निद्राके विच्छेद-भयसे मैं चुपचाप रह जाता था। धीरे२ वे श्लोक बहुत कुछ स्पष्ट

सुनाई देने लगे। मेरा भी कुतूहल बढने लगा। एक दिन ऐसे ही किसी छात्रसे दे पूछा कि भाई रात्रिको जो श्लोक पढ़ते हुए इधर उधर घूम रहे थे वह किस पुस्तकका है बड़ा सुन्दर है, मुझे भी लिखा दो आदि। उसने एकबार पढकर सुनाया और फिर कहा, आपको नहीं मालूम? यह साहित्य-दर्पणमें आया है और साथ ही पुस्तक खोलकर दिखा भी दिया। उस श्लोकमें किसी विरहिणी किंतु कुलटा नायिकाकी उक्ति थी। श्लोक तो याद नहीं है पर हां भाव याद है जिसमें वह स्त्री किसी नवान्तुकसे कह रही है कि बड़ी अंधेरी रात्रि है, पति परदेश गया हुआ है, सास वृद्धा या अंधी होनेके कारण चलनेमें असमर्थ है आदि। और अंतमें संभवतः यह भाव [illegible] गया कि 'जागरे बटोही यहां चोरोंका डर है।' पीछे जांच पर पता चला कि उस व्यक्तिका [illegible] बहुत पतित है, कईवार उसे छात्रोंने पकडा है आदि।

परन्तु मुझे स्वयं जो साहित्य पढनेका बहांपर कटुक अनुभव हुआ वह पाठकोंके सम्मुख रखता हूं। अवकाश रहनेके कारण मैं भी साहित्यके प्रायः सभी मुख्य२ पाठ पढने लगा था। साहित्य-पढनेमें मेरी भी दिलचस्पी बढने लगी; क्योंकि उसी वर्ष मेरी शादी होचुकी थी। फल स्वरूप मुझे भी स्वप्नदोष होना शुरू होगया। उस समय मैंने अच्छी तरह यह अनुभव किया कि जिस दिन किसी पुस्तकके शृंगाररसका वर्णन पढते हुए मैं सोजाता था, उस दिन स्वप्नदोष होजाता था। इसलिए अकस्मात् बनारस छोड़नेको मैंने अच्छा ही समझा; क्योंकि इस साहित्यकी कृपासे मेरे स्त्रीसमागमकी तीव्र लालसा रहने लगी थी। ध्यान रहे कि मैं १४ जुलाई सन् २४ से १९ नवम्बर सन् २४ तक कुल ४ मास ५ दिन ही बनारस रहा था। जिसमें अक्टूबरके प्रारम्भमें ही साहित्यदर्पणादिक पढना प्रारम्भ किया था।

सोचनेकी बात है कि जब मेरे ऊपर १½ मासमें ही इस साहित्यने इतना प्रभाव दिखाया तो निरन्तर उसका ही अध्ययन करनेवालोंकी क्या दशा होती होगी?

दूसरा अध्यापन क्षेत्र—साढूमल रहा सो विशारद प्र० खण्ड तक ही पढाई पहुंच सकी थी। उतनेमें ही बनारस प्रथमाके ग्रन्थ पढाते समय मेघदूतके उसी श्लोकपरसे एक छात्रपर अवश्य कुछ सन्देह हुआ था जिसका पीछे पता चला कि उसमें हस्त-मैथुनकी आदत पडगई थी। जिसके फलस्वरूप उसका शरीर धीरे२ क्षीण होता गया और तपेदिक होगया जिसके कारण गत वर्ष ही उस बेचारे अबोध बालककी मृत्यु होगई। ध्यान रहे कि वह छात्र इस समय एक बडे विद्यालयके शास्त्रीय कक्षाका विद्यार्थी था और अन्तिम समय वैद्यने ही इस बातका भण्डाफोड़ किया था।

(३) तीसरा अध्यापनका लम्बा क्षेत्र व्यावर रहा है, जिसमें मैंने चार वर्षतक लगातार दो संस्थाओंमें कार्य किया है। प्रथम संस्था [illegible] दि० जैन महाविद्यालय है, जहां [illegible] अध्यापकके रूपमें रहा। [illegible] श्वेताम्बर (स्थानक[illegible]) [illegible], जहांपर [illegible] न्याय [illegible] महाविद्यालयमें रहते हुए [illegible] वित जैसे ही हुए। कुछ अनुभव साहित्य समक्षमें दिखाये जाचुके हैं। हां, दो एक अनुभव अवश्य अधिक हुए।

प्रथम तो यह कि कभी भूलकर भी किसी संस्थामें ब्रह्मचारियोंके वेषमें रहनेवालोंको छात्राश्रमका छंटासा भी अधिकार नहीं देना चाहिए। अन्यथा ऐसे लोग स्वयं पतित होनेके साथ बेचारे अबोध छात्रोंका भी सत्यानाश (कुमार्गगामी) कर देते हैं। उनसे तो विवाहित अध्यापक ही बहुत उत्तम होते हैं।

[illegible] स्त्रियोंवाले कुटुम्ब नहीं रहने देना चाहिये। एक छात्रकी एक नव युवतीके साथ एक चिट्ठी पकड़ी गई, जिससे स्पष्ट प्रतित होता था कि उसका उस युवतीके साथ अनुचित संबन्ध है। यद्यपि ये दोनों मामले मंत्री महाविद्यालय तक पहुंच चुकने-पर ही मेरे सुननेमें आए थे, किंतु दुःख है कि दोनों ही मामलोंका रहस्योद्घाटन मेरे ही गुप्त जांच करनेपर हुआ, जिसमें प्रथम मामलेवालेका तो टिकट ही उसीदिन कटा दिया गया और दूसरेकी परीक्षाका समय निकट होनेसे एवं एक बड़े आदमीकी शानमें धब्बा लगनेसे मैंने गुप्त भेदसे बीचमें ही चिट्ठी लेकर रखली, और उस छात्रोंको घरपर बुलाकर अच्छी नसीहत दे प्रतिज्ञा कराकर छोड़ दिया। सौभाग्यसे उसका विवाह भी २ मास बाद होगया और फिर वह विद्यालयमें नहीं आया।

एक अनुभव यह भी हुआ कि छात्रोंमें जो लम्बे २ बाल रक्खे एवं गुन्डे फेशनके कपड़े पहननेका शौक प्रचलित हुआ है या गाने बजानेका शौक लगा है वह भी छात्रोंके अधःपातका कारण है।

शेष अनुभव मैं सुपरि० या आचार्य शीर्षकमें कर चुका हूं एवं उनके सुधारनेका उपाय भी वहीं बता चुका हूं।

दूसरी संस्थामें काम करते हुए जो अनुभव हुए वे वास्तवमें प्रशंसाके योग्य एवं आदरणीय हैं। यदि हमारी संस्थाओंमें उसके समान ही प्रबंध होसके तो निःसंदेह छात्रोंका चारित्र समुज्वल रहेगा एवं [illegible] किसी भी प्रकारका दोष प्रवेश [illegible] करेगा।

पाठकोंको शायद आश्चर्य एवं जिज्ञासा होगी, कि एक संस्थामें कार्य करते हुए तो आपको इतने कटुक अनुभव हुए, और दूसरीकी आप इतनी प्रशंसा लिख रहे हैं, पर इसमें कोई पक्षपात या असत्य न समझें, क्योंकि यथार्थमें वह प्रशंसाके [illegible] है। इस [illegible] मुख्य कारण यह है कि उस संस्थाका [illegible] मनुष्य है। उनकी धर्मपत्नी [illegible] सब ब्रह्मचारी आर्याकी दीक्षा लेली है। यद्यपि आपका भी पहले ख्याल साधु बननेका था, परन्तु समाज एवं धर्मसेवाके भाव प्रेरित होकर एक पाठशाला खोली है, जिसमेंसे प्रतिवर्ष अनेकों व्याकरणतीर्थ, न्यायतीर्थ, सिद्धान्ततीर्थ आदि निकलते हैं। पढाईके बाबत तो मुझे यहां कुछ नहीं कहना है किन्तु आचरणके बाबत कहना पड़ेगा कि छात्रोंमें किसी भी प्रकारका कोई भी अवगुण नहीं पाया। दुराचारकी तो [illegible] है।

इसका मुख्य कारण यह है कि उस संस्थाके संचालक महाशयने छात्रोंकी दैनिक चर्याको ही अपनी दिनचर्या बना रखी है। छात्रोंके साथ ही साथ मैदानमें दोनों वक्त शौच साथ जाते हैं। जबतक सर्व छात्र निवृत्त होजावे, बराबर वहीं खड़े रहते हैं। यदि किसी कारणवश कोई छात्रसे जरासी भी देर अधिक लग जाती है तो तुरत उससे सबब पूछा जाता है। नहाने-धोनेमें साथ रहते हैं। साधु वंदनाके समय भी साथ ही। इतना ही नहीं किन्तु भोजन करनेके समय भी साथ ही बैठते हैं, यदि कोई छात्र रोटीको कभी कच्ची या कुछ जली हुई बतलाकर लेनेसे इन्कार करे, तो तुरत उसी रोटीको आप बड़े हर्षसे मांगकर खाते हैं। उनका छात्रोंको उपदेश है कि अपने पुण्योदसे जो सामने आवे उसे प्रेमसे स्वीकार करो। यदि कुछ हिस्सा जला या कच्चा है तो निकालकर अलग करदो।

ध्यान रहे कि उक्त महाशय वेतन भोगी नहीं हैं; किन्तु अपनी गांठसे हजारों रुपयोंको संस्थामें खर्च कर चुके हैं, और करते जाते हैं। इतने पर भी भोजन खर्च १०) रु० माहवार अलग देते हैं। इसकी इस क्रियासे छात्रोंमें उद्दण्डताका प्रवेश ही नहीं होने पाती है। हमारी संस्थाओंमें तो यह हाल है कि यदि कोई सुपरि० या अध्यापक भोजनालयका भी २-४ मास भोजन करते हैं, तो पेटेन्ट

शाक रोटी बनाई जाती है, और कभी२ तो बेचारे छात्रोंको भूखा ही मार दिया जाता है। एकबार इस पाठशालामें भी रसोईए व छात्रोंने मिलके यह निर्णय किया कि मैनेजर सा० को बढ़िया रोटी शाक बनाया करो और एक दिन बनाई भी तो तुरन्त ही उन्होंने रसोईएसे इस [illegible] कारण पूछा और डांटकर हमेशाके लिये सावधान कर दिया। पाठक देखें कितना निष्ठुर एवं उच्च आदेश था।

दूसरी महत्व पूर्ण बात यह देखी, कि सब छात्रोंको एक साथ एक हालमें ही सुलाते हैं और स्वयं सबके ठीक बीचोंबीच सोते हैं। [illegible] सबके समान ही [illegible] पर बिस्तर लगाके। आपका कहना है कि छात्रोंको पृथक् २ कमरोंमें सोने देना ही उनके सत्यानाशका कारण है। ऐसा करनेसे प्रथम लाभ तो यह है कि रात्रिको प्रार्थनाके बाद कोई भी छात्र जागता हुआ बातें नहीं कर सकता है। दूसरा लाभ यह है कि ब्रह्मचर्यके भंगका स्वप्नमें भी संदेह नहीं रहता।

तीसरी महत्वपूर्ण बात छात्रोंकी विनयशीलता देखी। दो २ तीन २ विषयोंके तीर्थ ऐसे विद्वान् छात्रोंमें भी जो विनय देखी, वह अपनी संस्था [illegible] छात्रोंमें भी नहीं देखनेमें आई।

चौथी महत्वपूर्ण बात छात्रोंमें 'सेवावृत्ति' देखी। यदि कोई छात्र कभी बीमार पड़ जाय तो उस संस्थाके बड़े२ भी छात्र उसकी इस प्रकार तन-मनसे सेवा करेंगे, कि उस रुग्ण छात्रको कभी स्वप्नमें भी घरतककी स्मृति न होगी। दोबार निमोनियासे ग्रस्त दो छात्र, छात्रोंकी ऐसी ही अथक सेवासे अच्छे हुए हैं। मैंने तो यहांतक देखा कि बीमार छात्रके शौच, वमनादिक उठानेमें भी वहांके छात्रोंमें कोई संकोच नहीं। प्रत्युत अपना कर्तव्य समझकर विना किसी अधिकारीकी प्रेरणाके सहर्ष ही स्वयं उठाते हैं। सेवावृत्तिके विषयमें अपनी संस्थाओंके छात्रोंकी क्या दशा है, सो लिखनेकी आवश्यकता नहीं है, प्रायः सभी जानते हैं।

पांचवीं सबसे अधिक महत्वपूर्ण बात सदाचरणकी पाई, कि कभी किसी भी छात्रकी कोई दुराचार सम्बन्धी शिकायत सुननेतकमें भी नहीं आई।

शायद पाठक कहें कि जब एक संरक्षक २४ घण्टे ही उनकी देखरेख करता है, तब कोई कुटेव कैसे पड़ सकती है। इसके लिये तो असलमें उत्तम यह है कि देखरेख तो निमित्त मात्र है। अन्तरंग कारण तो दूसरा ही है। वह है उस संस्थाकी महत्वपूर्ण बात 'साहित्यके पठन-पाठनका अभाव'। उस संस्थामें अन्य विषयोंकी इतनी ऊंची पढ़ाई होते हुये भी अभीतक साहित्यका पठन-पाठन इसीलिये बंद रक्खा गया है कि साहित्यके शृंगार रसके वर्णनसे छात्रोंमें दुराचरणकी संभावना है। कुछ छात्रोंको साहित्य मध्यमा तक पढ़ाया भी गया किन्तु उनमें कुछ विकार भाव जागृत होते देख तुरत बन्द कर दिया गया जिसका प्रत्यक्ष फल उनके सामने है। अस्तु!

इस सम्पूर्ण कथनका सारांश यह है कि साहित्य पठनसे छात्रोंमें विकार बुद्धि जागृत होती है [illegible] सुपरिन्टेन्डेन्टकी देखरेखकी कमीसे उसपर [illegible] जाती है। यहांपर कोई कोई सुपरि० की देखरेख [illegible] निमित्त कारण समझ कर साधारण न समझे, या [illegible] दृष्टिसे न देखे। क्योंकि निमित्त कारणमें वह शक्ति [illegible] उपादान शक्तिके विद्यमान होते हुए भी यदि बाह्य निमित्त कारणोंका अभाव होता है तो वह कुछ भी कार्य नहीं कर सकती है। इसलिए सुपरि० की देखरेख तो पूर्ण रूपसे रखनी ही चाहिये। इतना ही नहीं; किन्तु प्रत्येक छात्रके चारित्रको बड़ी सूक्ष्म दृष्टिसे अध्ययन करनेमें सावधान रहना चाहिये।

आशा है हमारे प्रेमी पाठक खासकर संस्थाओंके संचालकगण मेरे इन अनुभवोंसे कुछ शिक्षा ग्रहण करेंगे और जिस प्रकार छात्रोंका सुहित हो उसे निर्धारित करेंगे।